॥ श्रीः ॥

श्री साधुबेला तीर्थ

अर्थात्

श्रीगुरु बनखण्डी उदासीन जी के स्थान का

संक्षिप्त इतिहास
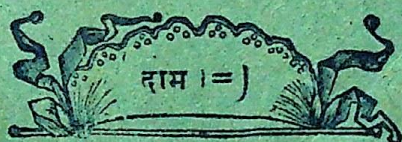
लेखक :—

कार्ष्णि नारायणदास
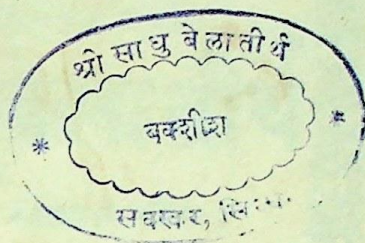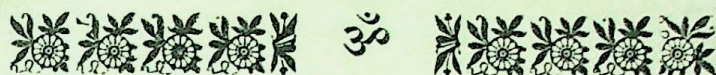
ॐ

श्री जगत गुरू श्रीचन्द्रदेवाय नमः।

श्री साधुबेला तीर्थ

(अर्थात श्री गुरू वनखण्डी मन्दिर)

का

संक्षिप्त इतिहास

प्रकाशक

पूज्यपाद श्री १०८ मान् योगीराज गुरू स्वामी
वनखण्डी सिंहासनासीन महन्त श्री साधुबेला
तीर्थाधिष्ठातृ श्री १०८ मान् स्वामी
हरिनामदासजी उदासीन

लेखक,

कार्ष्णि नारायणदास

प्रति २०००] द्वितीयवार [दाम ।=)

चैत्र शु. ७ भौम
१९८६
श्रीगुरू वनखण्डि जयन्ती } १६ अप्रैल १९२९
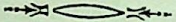
श्री 'अमर' बिजली प्रिण्टिङ्ग प्रेस सक्खर में छपा
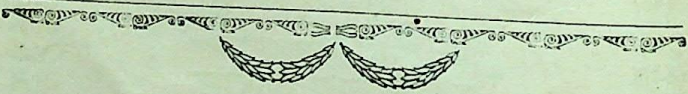
Printed by Shri A. H. Udasin,

at the

Amar Electric Printing Press, Sukkur (Sind).

Published by His Holiness Shri Swami

Harinamdasji Mahant Shri Sadhubela

Tirath, Sukkur (Sind).
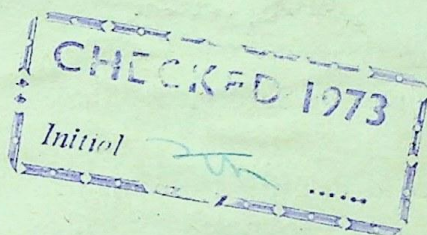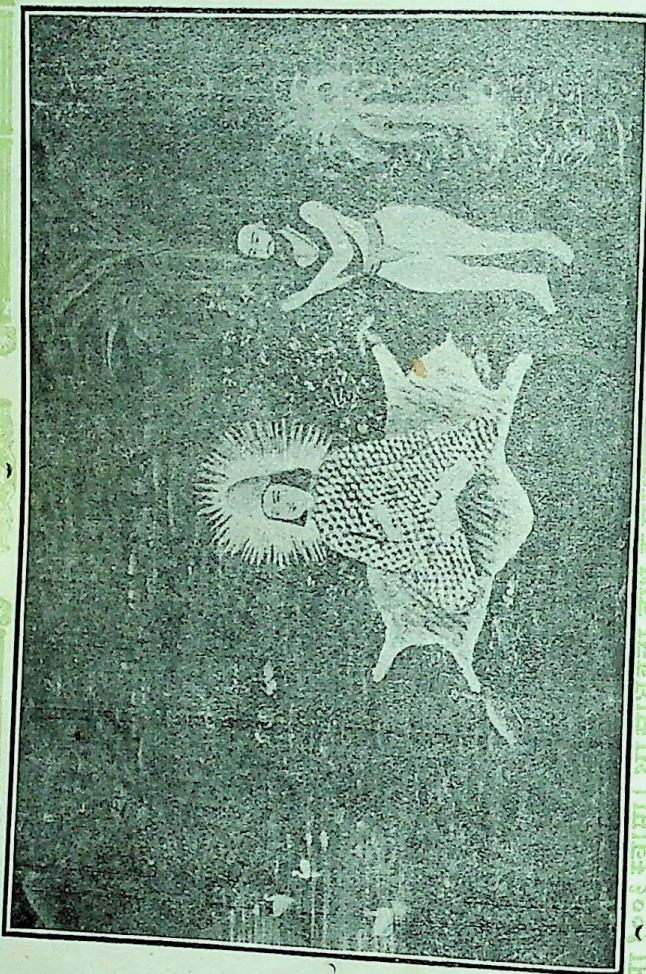
श्री १००८ स्वामी (श्री साधुबेला तीर्थ के संस्थापक)
पूज्यपाद श्रीगुरु वनखण्डीजी सिद्धेश्वर उदासीन।

श्री १०८ निर्वाण स्वामी
हरिनारायणदासजी उदासीन

समर्पण

स्वदेश प्रेमी, विद्यानुरागी, लोक-प्रिय, समुन्नतमना
श्री साधुबेला तीर्थ के अधिपति
परमहंस परिव्राजकाचार्य्य
श्री मदुदासीनवर्य्य
श्री १०८ मत्

स्वामी हरिनामदासजी

के

पूज्य चरणारविन्दोंमें :-

स्वामीजी !

यह लीजिए यतिवर्य्य मुझसे, भेट अपनी लीजिए;
निज पूर्वजोंका चरित अमृत, पान रुचिसे कीजिए।
इतिहासकी रचना विषे, सब आपका आयास है;
उस श्रमका परिणाम शुभ, अब आपकेही पास है॥

कार्ष्णि नारायणदास

॥ श्री हरिः ॥

भूमिका

श्री विश्वम्भर परमात्माका अमितवार धन्यवाद है जिनके पूर्ण अनुग्रहसे यह इतिहास लिख चुका हूं। यह सब खोज स्वनामधन्य श्री १०८ महन्त स्वामी हरिनामदास श्री साधुबेला तीर्थके अधिपतिकी है मेरा तो केवल लेखनीका लिखनाही है।

यद्यपि मैं इस पुस्तकको जीवन चरित्रके ढंगपर ले गया हूं तो भी इसको इतिहास कहना असंगत न होगा क्यों कि अंग्रेजांमें यह कहावत प्रसिद्ध है कि "History is but the biography of the great men" अर्थात इतिहास केवल महद् पुरुषोंका जीवन चरित्रही है।

श्री स्वामी वनखण्डीजीने इस तीर्थपर यह स्थान वि० सं० १८८० में बनाया है; अब यह शङ्का होना आवश्यकीय है कि इससे पहले यह तीर्थ किस दशा में था? भाई हरीसिहं ने साधबेला बिलास अपने मन से गढ़कर लिखा है जोअशुद्धियों कर के लोक मान्यनहीं है जिसकी सबूती का सबूत यहहै साधबेला विलास दोप्रकार के बनायेहै सोभी ठीक नहीं बन सके इसी तरह भाई ज्ञानसिंहजी ज्ञानी तवारीख गुरू खालसा के सन् १८९७ वाले दूसरे संस्करणमें २५८ पृष्ठ पर लिखते है कि:—

"ऐथेभी बावेदे मकान बणे होएहन॥ ऐथे चल, सखर, भखर, ते रोहड़ी दे मध सिन्धु दरियादे विचकार जिथे हुण साधबेला है बोहड़ हेठजा बैठे। ख्वाजे पीरदे मुजावर चर्चा ते बावेजी दी बाणी सुणके अते आत्मिक शक्ती देखकर सब हार गए।"

पत्ता नहीं लगता कि किस आशयको लेकर भाई ज्ञान सिंहने ऊपरकी पंक्तिएं लिखी हैं। हमारी दृष्टिमें तो वह "वदतो व्याघात" के विना और कुछ लिख ही नहीं सका है क्यों कि अपने शब्दोंसे ही अपने लेखका खण्डन कर रहा है। क्यों कि श्री साधुबेला तीर्थ उन दिनोंमें अर्थात् वि०सं. १५७६ में निर्जन स्थानही था। हां बाकी सिन्धु नदके मध्य वरुण देवके स्थान (जिंदहपीर) की उन दिनोंमे अच्छी प्रतिष्ठा थी। अबतकभी यह स्थान उसीही रूपमें चला आता है। ख्वाजे पीरके मुजावर मुसलमान लोग आज तक वहांही रहते आये हैं उनके साथही श्री गुरू नानकदेवकी चर्चा हुई। वहां पश्चिमोत्तर कोनमें श्री गुरू नानकदेवकी गद्दीभी बनी हुई है जो आजतक विद्यमान है और यहां तक सुना जाता है कि श्री गुरू नानकदेवने दांतन करके वहां फेंका था जिससे टाली का पेड़ लग गया था वह पेड़भी आजतक देखनेमें आता है॥ इन बातोंसे सिद्ध होता है कि वि० सं० १८८० सम्वतसे पहले श्री साधुबेला तीर्थ नहीं बसा था॥ इसी तरह तीसरा झूठका पहाड़ "श्री गुरु द्वारे दर्शन" संग्रह कर्ता भाई ठाकुर सिंह ज्ञानी जिस का छपाने वाला भाई लाभसिंह ॲड सनज पुस्तकां वाले पुस्तक भंडार ग्रन्थमाला नं० १४ - एजंट खालसा ट्रैक्ट सुसैटी जर्नल कमीशन एजंट बजारमाई सेवां अमृतसर जो वजीर हिन्दु प्रेस में छपायाहै १२ दिसंबर सन् १९२३ के छपे पत्रे ४९ नं० ७२ गुरुद्वारा साधु बेला साहिब की सुरखी देकर गुरु नानकजी को भूठाही आनां सिद्ध करताहै इन के साथ मुसलमान फकीर ख्वाजा अबदुलहक सिंधी मिल्या अते मार्फत वचन कीये इस तरह के मन घडंत बातों की कथा लिखके गुरु नानक जी का रहिना लिखताहै इस ज्ञानी फिरस्ते से पूछते हैं

कि उस वखत आप साथमें थे ईहां गुरू नानक जी का आना न्रां तो सिन्धु आदमी और न सक्खर के वसनीक न रोहडी के वसनीक और न तीर्थ के महन्त आना मंनतेहैं फिर खबर नहीं इन बातों का मुख पैर कैसे बनाकर झूठ को सचु करते फिरते हैं ईहां तक झूठ लिखाहैं कि ईहां के वृक्षभी श्री गुरू बनखण्डी जी के लगाये हुयों को भी पहिले के लगाये लिखता है पुस्त ब पुस्त श्री साधुबेला तीर्थ के महन्त होते आयेहैं उनकोभी पुजारी लिखकर हक उड़ा नां चाहिताहै उस अज्ञानी का लिखा लेख बिलकुल झूठ औ बे इतबारी का है इस सबूती कर मैं समुझताहूं कि एह सारी पुस्तक भरोसे योग्य नहीं जो गुरु द्वारे उस पुस्तक में लिखे हैं उन सभी महन्तों को खार्ज कर पुजारी लिखने की कोशिश कर पुस्तक छापके स्थानों के कबजे करने का रस्ता निकालाहै इस लीये सभी महन्त लोगों को संभल कर खण्डन उस पुस्तकका करणां चाहीये ॥

वि० सं० १८८० से पहिले श्री साधुबेला तीर्थ नहीं था टेकरी पहाड़की थी सबसे प्राचीन भक्खरका क़िला है जो वि० सं० १५२१ में बसा था और इन्हीं दिनोंमें मुसलमानोंका राज्य होनेसे ज़िन्दहपीरकाभी बहुत ज़ोर था उसके पीछे तीनसौ वर्षकेभी पीछे वि० सं० १८८० में श्री साधुबेला तीर्थ श्री स्वामी बनखण्डीजीने आकर बसाया ॥ नया सक्खर वि० सं० १९००में बसाथा और बड़ा पुल (Lansdowne Bridge) वि० सं० १९४६ में तय्यार हुआ था॥ पूर्व भाग में रोहड़ी नगर राजा दलूराय अरोड़ बंसक्षत्री नें विक्रम सम्बत के आरम्भ में बसाया था वि० सं० १९४६ में मियाणी रोड वाला श्री साधुबेला बना। वि० सं० १९७५-७८ में ऋषिकेश और वि० सं० १९६९ में तपोवन श्री सिन्धु गंगाके दोनों तटों पर शोभित होते भए।

पूर्व कालमें कुम्भका मेला श्रावण भादों महीनेमें श्री सिन्धु नदीके तीर पर भी लगताथा इस बारेमें शिवपुराण के विश्वेश्वर संहिताके १२ अध्यायका २१ श्लोक सूचित करा रहा है कि :—

ब्रह्मलोकप्रदं विद्यात्तपः पूजादिकं तथा।

सिन्धुनद्यां तथा स्नानं सिंहे कर्कटके रवौ ॥ २१ ॥

अर्थात् सिन्धु नदीमें किया हुआ तप, पूजा तथा सिंह और कर्क राशिमें सूर्यका संक्रमण होनेपर अर्थात श्रावण, भादों महीनेमें किया हुआ स्नान ब्रह्मलोकका देनेवाला है ॥

यह सबको मान्य है कि सिन्धु नदी सब नदियोंसे बड़ी है श्री गंगा नदी १५०० मील विस्तृत है ब्रह्मपुत्रा १४०० मील परिमित है और सिन्धु नदी इनसे अधिक विस्तीर्ण १७०० मीलमें कई देशोंको पावन कर रही है ॥ इसी कारणको लेकर ही कहीं कहीं सिन्धु नदीको नद, उदधि, समुद्र आदि की उपाधिएंभी मिली हुई हैं यथा

सिन्धूदधिसमंतीर्थं न भूतं न भविष्यति।

अमरामृत्युमिच्छन्ति अन्येषांतत्रकाकथा ॥ १६ ॥

नारायण सरोवर महात्म्ये १ अध्याये

अर्थात्—सिन्धूदधि (सिन्धु नदी) के समान न कोई तीर्थ हुआ है और न होगा जहां देवता गणभी अपना शरीर छोड़ना चाहते हैं तो औरोंकी क्या कथा कही जाय?

औरभी लीजिए

सिन्धौगत्वाविशेषेण स्नानंकुर्वन्तियेजनाः ।
मुच्यन्तेनात्रसंदेहः श्रीनृसिंहप्रसादतः ॥ ८३ ॥

पद्मपुराण उत्तर खण्ड १७४ अध्याय

श्री सिन्धु गंगाके तटपर जो पर्वके समय स्नान करते हैं वे श्री नृसिंह भगवान् की कृपासे पापोंसे छूट जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं है ॥

उदासीन शिरमुकुटमणि पूज्य श्री १०८ मत् स्वामी हरिनामदासजीकी कृपासे एक बडाही पुस्तक "श्री सिन्धु सप्तनद साधुबेला तीर्थ माहात्म्य" नामक प्रसिद्ध हो गया है जिसमें उपरोक्त विषयके कई प्रमाण पाये जाते हैं ॥

सारांश यह है कि किसी कालमें सिन्धु नदीके तटपर अवश्य कुम्भका मेला लगाता था किन्तु जब बौद्धोंका राज्य हुआ तब उन्होंने सनातन धर्मसे द्वेष होनेसे सब जगह कुम्भ उठा दिए फिर जब श्री शङ्कराचार्य्यजीका उदय हुआ तब उन्होंने हरिद्वार, प्रयाग, उज्जयिनी नगरी और गोदावरी के किनारे में कुम्भका प्रचार किया कारण यह था कि उन दिनों में सिन्धु देशमें मुसलमानोंका ज़ोर बहुत था इस लिए उन्होंने यहांपर बहुत उपाधी समझकर सिन्धु नदीके तटपर प्रचार न किया ॥

एक मोटी बात यहभी लिख देना आवश्यक समझी जाती है कि यह वही सिन्धु नदी है जिसमें औरभी गंगा स्वरूप परम पुनीत सात नदिएं आकर मिलती हैं जिनके बहुश्रुत नाम ये हैं १ व्यासा (विपाशा) २ शतद्रु (सतलुज) ३

चन्द्रभागा (चनाव) ४ सरस्वती (लुण्डा) ५ इरावती (रावी) ६ वितस्ता (झेलम) ७ सिन्धु (अटक) महाभारतभी इनके वर्णन करनेसे नहीं रह सका हैं यथा---

विपाशा च शतद्रुश्च चन्द्रभागा सरस्वती ।
इरावती वितस्ता च सिन्धुर्देवनदी तथा ॥ १९ ॥

सभापर्व अध्याय ९

वेद पुराणें आदिमें तीर्थ या शुभस्थलाका वर्णन जहां कहींभी आया हैं वहां २ उपरोक्त नदियोंका बड़ाही माहात्म्य लिखा हुआ हैं । केवल सिन्धु नदीमें स्नान करनेवालेको वही पुण्य मिलता हैं जो उपरोक्त सात नदियोंका अलग अलग वर्णन किया हुआ है क्यों कि वे सातों नदिएं सिन्धु नदीमें आकर मिलती हैं ।ऐसी कलि कलुष हारिणी श्री सिन्धु गङ्गा के झगमगाती लहरियोंके मध्यमें श्री साधुवेला तीर्थ विराजमान है जो मैनाक पर्वतपर स्थित है मानों श्री सिन्धु गंगा श्री साधुवेला तीर्थ को गोदमें लिए रही है जैसे क्षीर सागर में शेश नाग परि विष्णु तैसे श्री गुरू बनखण्डी जी बैठे और चक्र तीर्थकी भी वहां स्थिति है जिनका महत्वभी शास्त्रोंमें यत्र तत्र पाया जाता है ॥

इसी श्री साधुबेला तीर्थको वि० सं० १८८० में श्री स्वामी वनखण्डीजीने प्रकट किया जिसको आज एक कम एक सौ वर्ष होते हैं इस इतिहासको जाननेकी वहुतसे प्रेमियों को उत्कण्ठा थी जो परमहंसावतंस श्री १०८ मत् स्वामी हरिनाम दासजीकी कृपासे आज पूर्ण हुई है ॥

नोट- बाबा कर्णदासजी कुठारी, और बाबा चेतनप्रकास जी (अल्लीपुर वाले), बाबा ईश्वर दासजी गुरु श्री वनखंडी जीके चेले, सेठ टहिलमल कंपनी पुराणे सक्खर वाले, तथा अन्यबृद्ध साधू तथा गृहस्थों से संचित किये हुये और तथा पहिलेके लिखे हुयेभी नोट जो श्री स्वामी हरिनामदासजी महाराज के पास एकात्रितथे सो उनसे लेकर मैंने परिश्रमके साथ अपनी बुद्धि अनुसार "श्री साधुबेला तीर्थ" का संक्षिप्त इतहासतिय्यार कियाहै आशा है कि पाठक महानुभाव अवश्य लाभ उठाकर मुझे कृतार्थ करेंगें ।

चैत्र शुक्ला—७
१९७९
श्री वनखण्डी जयन्ती

विनीत
कार्ष्णि नारायणदास
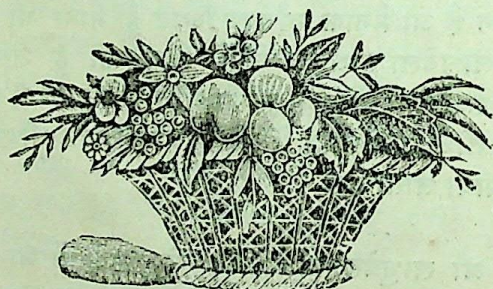
ॐ

॥ श्री गुरुदत्तः प्रसन्नः ॥
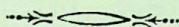
अनुक्रमणिका

श्री स्वामी गुरू बनखण्डीजी सिधेश्वर जीका जीवन चरित्र।

प्रथम सर्ग—पूर्व परिचय

द्वितीय सर्ग—बाल्यावस्था

तृतीय सर्ग—तीर्थ यात्रा

चतुर्थ सर्ग—सिन्धु देशागमन

पञ्चम सर्ग—श्री साधुबेला तीर्थमें स्थिति

षष्ठ सर्ग—देहावसान

सप्तम सर्ग

अष्टम सर्ग

नोट– पत्रा ३६ में वि०सं० १८८० वैशाख शुदी २ बावा विशनुदासजी चेला बने पढ़नां

चित्र सूची

पत्रांक

तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्री गुरू श्री चन्द्रदेवाय नमः। श्री स्वामि वनखण्डिने नमः॥

संक्षिप्त इतिहास

श्री साधुबेला तीर्थ

श्री स्वामी वनखण्डी उदासीन जी सिद्धेश्वर का जीवन

प्रथम सर्ग —— पूर्व परिचय

स्वामी वनखण्डी जी महाराज को अब के डेढ सौ वर्ष से ऊपर समय व्यतीत हो गया है किन्तु प्रमाणीक बात है कि इस समयसे कोई डेढसौ वर्ष पहले अर्थात सम्वत् १७६० विक्रमी के लग भग में भी वर्तमान थे और किसी कारण

से जो हम आगे चल कर कहेंगे उनको देहावसान कर पुनः वि० सम्वत् १८२० में अपना अवतार प्रकट करना पड़ा॥ अतः अच्छा होगा जो पहले पाठकों को स्वामी जी के वि० सं० १७६० वाले शरीर से किये हुए चरित्रों का थोरा सा परिचय दिया जाय॥

स्वामी जी का इस से पूर्व का वृत्तांत कुछ नहीं मिलसकता है जब कि वे मोरन्न झाड़ी में तपस्या करते थे। यह मोरन झाड़ी की वस्ती नेपाल रयासन में आज तक भी विद्यमान दर्भङ्गा राज्य की पूर्व की ओर ५० कोस स्थितहै॥

" तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत्।
तपसा क्षीयते पापं मोदते सह दैवतैः॥
तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः।
तपसा सर्वमाप्नोति तपसा विन्दते परम्॥
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः सौभाग्यं रूपमेव च।
तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यं हि तपस्यतः॥ "

इन अग्नि पुराण के प्रमाणों के अनुसार तप का महत्वजान कर स्वामी जी तीन प्रकार की कायिक १ वाचिक २ और मानसिक ३ तपस्या करने में निमग्न रहते थे॥ बस हमको इस काल से ही स्वामी जी के चरितामृत पान करने का सौभाग्य मिलता है॥ यहां मोरन्न झाड़ी में एक गुसांई सन्यासी साधु भी रहताथा जिसके वहुत ही यजमान तथा याजक पूजक थे जो प्रायः उसके पास भेट्ट पूजा चढ़ाने आया करते थे। वह साधु स्वामी जी के तप का प्रभाव न सहार सका और अकारण ही वैमनस्य में पड़ कर स्वामी जी को वहां से हटाने का षड्यन्त्र रचने लगा॥ अत्यन्त गाढ़ विचार के पश्चात् वह गुसांई नेपाल के राजा के पास गया और उसको कहा कि "हे महाराज! मेरी कुटिया

श्री १००९ योगीराज गुरू वनखण्डिजी महाराज उदासीन
श्री साधुबेला तीर्थ संस्थापक सक्खर (सिन्धु)

के पास में एक साधु बहुत दिनों से निराहार और निर्जल रह कर आप के राज्य को नष्ट करने के लिए घोर तपस्या कर रहा है अतः आप इसका योग्य उपाय करें॥ इस प्रकार वह साधु तो अपना असाधुता का वर्ताव करके चला गया किन्तु राजा अत्यन्त भयभीत होकर अपने मंत्रियों और सैनिकों को आज्ञा करने लगा कि ऐसे तपस्वी का शीघ्र ही तपो भङ्ग होना चाहिए और वह यहां राज दर्बार में भी लाया जावे॥

आज्ञा होते ही राज्य कर्मचारी बड़े शीघ्र गामी अश्वों पर सवार हो कर हमारे स्वामी जी के पास आए और उनको एक वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाये योगारूढ़ समाधि में बैठे देखा॥

यह शास्त्रोक्त बात कभी असत्य नहीं हो सकती कि सच्चे महात्मा पुरुष के दर्शन करने से कैसा भी क्रूर मन एक समय तो शान्त हो ही जाता है, जैसे वाल्मीकि आदिकों के दृष्टांत प्रसिद्ध हैं॥ यह बात नेपाल के राज्य कर्म चारियों से भी लग गई अर्थात् स्वामीजी के दर्शन करने से उन के मन शीतल हो गये और जिस क्षोभ से वे आये थे वह अब नहीं था॥ क्यों न हो भला हमारे स्वामी वनखण्डी जी कोरे तपस्वी तो न थे वे इस बात को भी भले प्रकार जानते थे कि:-

"आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥"

अत एव वे हरि परमात्मा की आराधना युक्त और सांगोपांग योगाभ्यास सहित त्रिविध तितिक्षा कर रहे थे॥ किसी

भी राज्य कर्मचारी को साहस नहीं हुआ जो स्वामी जी को कुछ कह सके॥ जब योगारूढ़ स्वामी जी ने समाधी से अपने नयनारविन्दों को स्फ़ोटन किया तब वे लोग हाथ बान्ध कर कहने लगे कि हे कृपालो! आप त्रिकालज्ञ हो हम राजा से आज्ञा किये हुए आपको बुलाने के लिए यहां आये हैं॥ हमारे को सर्वथा निर्दोषी समझ कर आप वहां पधराने की कृपा करें॥ तब स्वामी जी प्रसन्न मुखारविन्द से उनको कहने लगे कि "हम सब जानते हैं कि तुम लोग निर्दोषी ही हो! घबराओ नहीं, हम तुम्हारे से पहले ही वहां पहुंच जावेंगे, तुम लोग चलते रहो॥ स्वामी जी तो पवन रूप हो कर क्षण भर में नेपाल पहुंच भी गए किन्तु वे कर्मचारी जो अब तक वहां ही थे वे स्वामीजी को वहां न देख कर मूढ हो गये और इतस्ततः खोजने लगे किन्तु स्वामीजी वहां होते तो उनको कहीं मिलते अतः वे भटकते २ कुछ दिनों के बाद ही नेपाल में पहुंचे॥ वहां पहुंच कर शहर के बाहर उन्हों ने स्वामी जी को सिद्धावस्था में एक पेड़ के नीचे देखा यह अलौकिक घटना देख कर वे विस्मित हो गये और सारा वृत्तान्त जाकर उन्हों ने राजा को सुनाया॥ ऐसे दिव्य समाचार सुन कर राजा के सब तर्क वितर्क उड़ गये और मन ही मन में पश्चात्ताप करके उस गुसांई साधु की निन्दा करने लगा तथा च अपने सब मन्त्री और राज्य कर्मचारी साथ लेकर स्वामी जी के पास आया और अपने किए हुए दुष्कर्म की क्षमा मागनेलगा कि "हे दयार्णव! मैं अत्यन्त ही डरपोक और निकृष्ट हृदय हूं जो एक पिशुन गुसांई के कहने पर मैं आप से संदिग्ध हो कर इतनी अवज्ञा करने को उद्यत हो गया। इस अपराध करने से मैं आप से वार वार क्षमा मांगता हूं, आप पूर्ण कृपालू हैं अतः आप मेरी नीचता अवश्य क्षमा करोगे।" स्वामी जी उसके पूर्ण पश्चात्ताप करने से प्रसन्न हो कर उस

को प्रेम मयी दृष्टि से देखने लगे। तब फिर राजा कहने लगा कि हे सिद्ध शिरोमणी ! आप यहां पधार कर मेरी नगरी को पावन कर रहे हैं अतः मैं ईश्वर का मन से धन्यवाद करता हूं। हे प्रभो ! मैं आप का शिष्य होना चाहिता हूं, आशा है कि इस दीन को अपनाय के मन्त्रोपदेश करोंगे और मेरे स्थान पर पधारने के लिए भी अपने पवित्र चरण कमलों को कष्ट देने की कृपा करोंगे। इस में मैं अपने को कृत्य २ मानूंगा ॥ तब स्वामी जी सुस्मित वदन से राजा को कहने लगे कि मैं तेरी श्रद्धा और प्रेम देख कर प्रसन्न हुआ हूं। आज से लेकर मेरा तेरे ऊपर पूर्ण अनुग्रह रहेगा ॥ तत्पश्चात् स्वामी जी राजा के स्थान पर गए और उसको दीक्षा देकर उसके कलिकलुषित हृदय को अपने उपदेशों से शुद्धता से भूषित कर दिया था तथा उसको वर दान दिया कि जब कभी तेरे ऊपर कोई विपत्ति आ पड़े तब हमारा स्मरण करोंगे तो तेरी सब आपदाएं दूर हो जावेंगी ॥ इतना कहते ही स्वामी जी अन्तर्धान हो गए और अपने पूर्व वाले स्थान मोरन्न झाड़ी में आकर प्राप्त हुए ॥ इसके पीछे वह राजा प्रति वर्ष में एक वार अपने सारे परिवार सहित स्वामी जी के दर्शन को जातारहा ॥ आज तक भी जो वहां का राजा सिंहासनासीन होता है वह अपनी रक्षा के लिए वहां की भस्मी प्रति वर्ष मंगाता रहता है ॥

कुछ समय के पीछे चर्म पोश दूसरानाम हरिदास एक उदासी साधु जो कई दिनों से स्वामी जी के दर्शन के लिए तड़फ रहा था वह ढूंढते २ बड़े आयास से स्वामी जी के साथ आय के मिला जो वहां उनके सामीप्य में ही रहने लगा ॥ ये सदैव अपने पास मृग चर्म रक्खते थे इस लिए इनका नाम चर्म पोश कहा जाता था ॥

भेड़िया मठ, धूणी साहिब और तकिया साहिब नाम से

तीन स्थान थे जहां बैठ कर नित्य स्वामी जी समाधि लगाते थे॥ प्रातः काल चार बजे से आठ बजे तक भेड़िया मठ में; आठ बजे से शाम के सात बजे तक धूणी साहिब में, सात बजे से अर्ध रात्रि के ३ बजे तक ताकया साहिब में योगारूढ़ हो कर समाधि में लीन हो जाते थे। शेष एक घण्टा शौच क्रिया स्नानादि में व्यय करते थे इन तीन स्थानों में प्रत्येक के मध्य में १३ माईल से अन्तर कम नहीं है किन्तु हमारे चरित्र नायक स्वामी जी बिना किसी क्षण के व्यतीत किये ही अपने यौगिक बल से एक से दूसरे स्थान में पहुंच जाते थे॥

उपरोक्त साधु चर्म पोश किसी समय में एक अश्मखंड से नदी के तट पर बैठ कर अपने पांव धो रहा था तो इतने में वह पत्थर पास में पड़े हुए चमटे से लग गया और वह लोहा स्वर्ण के रूप में बदल गया॥ चर्म पोश ने उसी समय ही वह पारस पत्थर पहचान कर उस स्वर्ण मयी चमटे के साथ पारस कोभी नदीमें फेंक दिया॥ यहां पर प्रियतमदास नामक एक साधु जो यह सारा वृत्तांत आद्योपांत देख रहा था वह उसके सामने होकर कहने लगा कि हे निष्काम महात्मा! यदि यह पारस पत्थर आपको नहीं चाहीता था तो हमारे जैसों को दे देते तो कुम्भ आदि पर्वों पर अनेक क्षुधार्त साधुओं को तृप्त कर आप का गुणानुवाद गाते रहते॥ साधु चर्म पोश जी पूर्ण बिरक्त थे और फिर श्री स्वामी वनखण्डी जी महाराज जैसे परम तियागियों के साथ रहने से तो उनको और ही रङ्ग चढ़ गया था अतः वे हमारे नवीन परिचित साधु प्रियतमदास को माया और लोभ से आक्रान्त समझ कर उस के प्रति कहने लगे कि हे मित्र! ये जगत के पदार्थ झूठे हैं, जब ये स्थिर ही नहीं रहने तब इन से ममत्व कहां तक चल सकेंगा॥ यह जान कर हमने सबकुछ त्याग कर श्री स्वामी वन-

खण्डी जी का आश्रय लिया है और उनको ही अपना सर्वस्व समझ रहे हैं यदि आप भी अपने लोक परलोक का कल्याण चाहते हैं तो शुद्ध मन से श्री स्वामी बनखण्डी जी महाराज के अर्थ तपस्या करो वे शीघ्र प्रसन्न हो कर अपनायेंगे और आप के सर्वाभीष्ट पूर्ण करेंगे ॥ ये वचन सुन कर प्रियतमदास का मन आकर्षित हो गया और उनसे स्वामी जी का स्थान तपः प्रकार आदि पूछा ॥ साधु चर्म पोश जी ने स्वामी जी की तीन स्थानों पर तपस्या आदिक सब वृत्तान्त उसको सुनाया और यह भी कहा कि स्वामी जी अदृश्य रूप में रहते हैं अतः उनके दर्शन करने के लिए उग्र साधना की आवश्यकता है ॥ तब साधु प्रियतमदास जी धूणी साहिब के एक वृक्ष के तले बैठ कर अपने आराधनीय इष्ट देव श्री स्वामी बनखण्डी जी महाराज की उपासना में निमग्न होने लगे ॥ कुछ काल के पश्चात् स्वामी जी उसकी उपासना से प्रसन्न हुए और उसकी परीक्षा के अर्थ अपनी कटि काछनी (ज़ंजीर) को सर्प रूप में बनायकर उसके पास भेज दिया ॥ वह मायावी भुजङ्ग आय कर प्रियतमदास के शरीर में लपटने लगा और शीघ्र ही लौट कर स्वामी जी के पास आया ॥ प्रियतमदास को तो यह घटना देख कर विस्मित होना ही था किन्तु अब वे इस विचार में पड़ गए कि यह फणी मेरे शरीर में बहुत देर तक लपटता रहा तो भी मेरेको उसने काटा क्यों नहीं? मैं जान गया कि यह द्विजिह्व सांप अवश्य मायावी ही है ॥ अब मेरेभाग्य का सूर्य उदय हुआ दीख पड़ता है; निः सन्देह यह मेरेको स्वामी जी का मार्ग बताने ही आया होगा ॥ ऐसी धारणा दिल में रक्ख कर वह सांप के पीछे देखने लगा तो एक ग्वाला उसके दृष्टि गोचर हो गया जिस से प्रियतमदास जी ने स्वामी जी का मार्ग पूछा ॥ ग्वाला " स्वामी जी तो यहां ही मिलेंगे " कह

कर दृष्टि से अदृष्ट हो गया ॥ प्रियतमदास जी अचम्भे और उत्कण्ठा में मानसिक उद्गार रूपी लहरों में ज्यों ही गोते खा रहे थे त्यों ही एक ब्राह्मण देखने में आया जिसके पूछने पर प्रियतमदास जी ने अपना नम्र निवेदन करते हुए स्वामी जी के दर्शन के लिए अपनी व्यग्रता प्रकट की ॥ हम पहले ही पाठकों को जता देते हैं कि वह ग्वाला तथा यह ब्रह्मण स्वामी जी ही अपने उपासक के परीक्षा के लिए बनकर आये थे ॥ सो वह ब्राह्मण उसको यों कहता हुआ गायब हो गया कि "अरे भईया! सामने तो स्वामी जी बैठे हैं" ॥ ये शब्द समाप्त होने पर ही उसके नेत्रों में बिजलीका सा तेज आगया और दिव्य मूर्तिधारी स्वामी जी का दर्शन होता भया ॥ प्रियतमदास जी दर्शन करके बहुत ही प्रसन्न हुए तथा :—

प्रेमाश्रु तिसके लोचनों सें निकलकर बहने लगे ।

फिर भक्ति विह्वल कण्ठ से वे यों वचन कहने लगे ॥

कि "हे दीन दुःख निवारक! आज मैं अपने जन्म की सफलता समझ रहा हूं॥ आप के दर्शन करने से मैं कृतार्थ हो गया॥" ऐसी नम्र प्रार्थना सुन कर स्वामी जी उस का अभिनन्दन कर कहने लगे कि हे वत्स! हम तेरेसे अतिप्रसन्न हैं, जो इच्छा होवे सो कह दे हम उसे पूरा कर देंगे" ॥ प्रियतम दास जी सादर कहने लगे कि हे दयार्णव! यह किङ्कर केवल आपके पद कमल की सेवा करना चाहता है; इस से अधिक मेरे लिए इस असार संसार में कोई भी प्रियतम वस्तु नहीं है ॥ बस, मेरेको इस प्रियतम वस्तु का दासत्व ही अभीष्ट है ॥

संसार में सब विध हमारे सर्व साधन हो तुम्हीं ।

तन हो तुम्हीं, मन हो तुम्हीं, धन हो तुम्हीं जनहो तुम्हीं॥

स्वामीजी ने उसकी सेवा पर तीव्रेच्छा देख कर समीपता

में रहने की स्वीकृति दी ॥

इस में कोई संदेह नहींहै कि स्वामी जी पूर्ण सिद्ध थे। शास्त्रों में आठ प्रकार की जो सिद्धियां वर्णन की गई हैं उन पर स्वामी जी का पूर्ण आधिपत्य था ॥ वे सिद्धियां शास्त्रों में जैसे वर्णित हैं तैसे हम पाठकों के सूचनार्थ यहां भी लिख डालते हैं यथा :-

अणिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्यं महिमा तथा ।
ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता ॥

१ - अणिमा = बहुतछोटे में छोटा रूप धारण करना ॥

२ - लघिमा = बहुत हलके में हलका रूप धारण करना ॥

३ - प्राप्ति = कोई भी वस्तु प्राप्त करने की शक्ति होना ॥

४ - प्राकाम्य = इच्छा की स्वतन्त्रता होना ॥

५ - महिमा = इच्छानुसार बड़े में बड़ा रूप धारण करना ॥

६ - ईशित्व = किसी के ऊपर भी अधिकार जमाने की शक्ति होना ॥

७ - वशित्व = किसी को भी वश में रख सकना ॥

८ - कामावसायिता (गरिमा) = संसारिक भोगों तथा इच्छाओं का संयम रक्ख सकना ॥

स्वामी जी केवल सिद्धियों के अधिपति ही नहीं थे किन्तु प्राचीन सिद्ध लोग भी उनके मिलने के लिए कभी २ आया करते थे जैसे सिद्ध गोरक्षनाथ की स्वामी जी के साथ प्रति एकादशी पर गोष्ठी हुआ करती थी ॥ उपरोक्त साधु प्रियतम दास को भी इस दिव्य गोष्ठी श्रवण करने का सौभाग्य मिलता रहा ॥

साधु प्रियतमदास को अब पाञ्च वर्ष की अवधि होगई थी ; एक दिन उसने स्वामी जी को कहा कि हे पूज्यतम स्वामी

जी ! संसार में आय कर कुछ ऐसा काम करना चाहिए जिस से सब प्राणियों का उपकार और अपनी जाति की उन्नति होवे मेरी इच्छा है कि उदासी साधुओं को साथ लेकर अखाड़ों की प्रथा डालूं, इसमें हमारी उदासीन सम्प्रदाय का यश होगा और साधु समाज तथा विद्यार्थी वर्ग आदिकों के सुख प्राप्ति का साधन बन जायगा॥ इसके उत्तर में श्री स्वामी जी कहने लगे कि कोई भी काम आसक्ति तथा फलेच्छा रहित होकर करना चाहिए आगे परिणाम में सुख दुःख पर प्रसन्न अप्रसन्न नहीं होना चाहिए॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
फलेऽसक्तो न बद्धयते ॥

श्री कृष्ण भगवान के इन वाक्यों का स्मरण करते हुए संसार में सब कार्य करने चाहयें॥ यहां से इस धूणी (अग्नि कुण्ड) की भस्मि लेता जाओ जिसका तिलक लगाते रहना और यह भस्मिका गाला भी ले जा जिसकी नित्य पूजा करते रहना॥ तत्पश्चात् स्वामी जी ने प्रियतम दास के मस्तक पर भभूती लगाई और जटाएं बट कर सिद्धि साद्धकी का रसम पूरी की तथा च उसको शुभ आशीर्वादों से विभूषित करके बिदा कर दिआ॥ आज तक जो हरिद्वार, कनखल, काशी आदिक तीर्थ स्थानों पर अखाड़े देखे जाते हैं व सब इन महात्माओं के अनुग्रह का परिणाम है॥ कनखल में जो उदासीन अखाड़ा है वह अद्य प्रभृति भी साधु प्रियतम दास के नाम से प्रसिद्ध है॥ कुछ काल के अनन्तर दो महा पुरुष सांसारिक सुखों को तिलाञ्जलि दे कर पूर्ण विरक्त अवस्था को प्राप्त कर स्वामी जी को अपना रक्षास्पद बनाने के लिए धूणी साहिब में आ गए॥ स्वामी जी उनकी वैराग्यवान दशा अवलोकन कर बहुत प्रसन्न हुए और उनका जोरा भोरा नामधेय कर उन्हें

अपनी सेवा में नियुक्त कर शिश्य करते भए॥ स्वामी जी जब कुटी के भीतर समाधि लगाय कर बैठे रहतेथे तब ये द्वार रक्ष करते थे क्यों कि प्रथम वर्णित चित्रामठ वाला गुसांई साधु यदा तदा स्वामी जीके साधनाओं में विघ्न ही डाला करताथा॥ झंगल से फल फूल लाने और कुटी का मार्जन लेपन आदिक सब कार्य वे बड़ी श्रद्धा और प्रेम से करते थे॥

किसी समय में इन दोनों शिश्यों का चित्त आम खाने को करने लगा और यह अपनी अभिलाषा उन्होंने स्वामी जी तक भी प्रकट कर दी॥ स्वामी जी ने उनको कहा कि यहां से थोरा दूर चित्रामठ में एक गुसांई साधु रहताहै वहां उसका एक सुन्दर हरा भरा बगीचा है॥ तुम उससे जाकर आम ले आओ॥ वे दोनो सत्य वचन कह कर वहां गए और आज्ञा नुसार यथोचित रीति से गुसांई से आम मांगने लगे किन्तु बबूल से भी कहीं बेर मिलतेहैं हमारे पाठक तो इस गुसांई से सुष्ठु परिचित ही हैं सो उसने अपने क्रूर और कठोर प्रकृतिके अनुसार उन्हें निराशा का उत्तर देकर कहा कि यदि तुम्हारा गुरु समर्थ है तो वह अपनी वाटिका क्यों नहीं लगाता? हमारे स्वामी जी के प्रिय शिश्य हताश हो कर अपने गुरूजी के पास रिक्त हस्तों से लौट आए और सम्पूर्ण वृत्तान्त यथा तथा करके स्वामी जी को सुनाया॥ श्री स्वामी जी उनको कहने लगे कि हे पुत्रो! कोई डर नहीं येन केन प्रकारेण आज नहीं किन्तु अभी ही तुमको आम्र फल खिलानेहैं॥ अच्छा! यहां कोई आम का पेड़ न होवे तो न सही, सामने जो साल वृक्ष दीक्ष रहेहैं उन में से आम तोड़ ले आवो। यह चमटा ले जाओ जिस किसी पेड़ को भी इस चमटे का स्पर्श करावोंगे उसमें ऋतु अनुसार सदैव आम लगते रहेंगे॥ तुम लोग कोई संशय मत करो, मेरे योग प्रभाव से ऐसे ही होगा जैसे मैं कह

रहा हूं आज्ञानुसार वे चमटा ले कर गए और चार पांच साल के पेड़ों को स्पर्श कराया तो उनमें आम लग गये और टोकरे भर कर स्वामी जी के पास लाए जहां सब खा कर तृप्त हुए ॥ आज तक ये साल के पेड़ विद्यमानहैं जिनमें पते आदि तो सब साल वृक्ष के जैसेहैं और फल आम का ही देते हैं ॥ कोई देख कर अपना संशय निवृत्त कर सकताहै ॥

एक समय भेडिया मठ में स्वामी जी ने जोरा भोरा दोनोंशिश्यों को कहा कि मेरे को प्राण दशवें द्वार चढ़ाय कर दश दिन की समाधि में बैठनाहै; मेरा शरीर ऐसा ही लगेगा मानों देहावसान हो गया है किन्तु मैं दश दिन के पश्चात् स्वयं ही जाग्रत होऊंगा ॥ तुम लोग बिल्कुल निःशङ्क रहें और द्वार की अच्छी तरह रक्षा करना यह बात भी स्मरण रखना कि यह काम मेरे लिए कोई प्रथम वार नहींहै, आगे भी कई वार ऐसी समाधियों में मैं रहा हूं ॥ इस प्रकार स्वामी जी दोनों को वार वार समझाय के अपनी समाधि में स्थित होते भए ॥

दो तीन दिन के बाद जब हमारे पूर्व परिचित द्वेषावसंयुक्त गुसाईं जी को इस समाधि का पत्ता लगा तब और ही किसी षड् यन्त्र की रचना करने लगा ॥ वह बहुत अच्छा अवसर जान कर जोरा भोरा को आ कर कहने लगा कि हे मूर्खों! तुम्हारा गुरु तो भीतर मृत्तक हुआ पड़ाहै और तुम दोनों यहां चैन में बैठे हुए हो ॥ यह कौन से धर्म शास्त्र की आज्ञाहै कि गुरु तो भीतर प्राणान्त हो गया हो और शिश्य नियम पूर्वक खान पान आदिक क्रियाएं करते हों ॥ तुम बड़ा ही अनुचित कार्य कर रहे हो; चलो! देखो तो सही कि तुम्हारे गुरुकी कोई नारी भी चलतीहै? शीघ्रता करो, उनके शरीर का दाह करके अपने गुरुकी अन्तिम क्रिया करो, नहीं तो राजा को पुकार भेज कर तुम लोगों को कड़ा दण्ड दिलाऊंगा! वे बिचारे बहुत

ही सीधे सादे थे , गुसाईं जी के प्रकोप में वे अपने स्वामी जी की बातें ही भूल गए और गुसाईं रचित षड् यन्त्र के पेच में फस गए तथा स्वामी जी के शरीर का अग्नि संस्कार करने को तय्यारी करने लगे ॥ आग लग गई, शरीरका आधाभी जलगया तब स्वामी जी दिव्य शरीर धारण कर प्रकट होते भए और अत्यन्त क्षुब्ध हो कर गुसाईं को कहने लगे कि " यद्यपि हम जानते थे कि:

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः॥

अर्थात् जो मायावियों के साथ अपनी माया नहीं खेलते वे पराभव को प्राप्त होतेहैं॥ तथापि हमने तेरा कोई बुरा नहीं किया तुमने हमारे साथ बहुत ही अत्याचार किये, हमारी साधनाओं में कई विघ्न बाधाएं डालीं अब भी हम केवल तेरे को इतना ही शाप देते हैं कि तेरी गद्दी पर जो भी तेरा अनुयायी बैठेगा वह यती नहीं रहेगा , उसको ग्रहस्थी होना पड़ेगा॥ गुसाईंजी ने उत्तर में कहा कि आपके मेरी सन्निधि में रहने से मेरा प्रभाव दिनों दिन कम होता रहा, इसी लिएमेरा इतना परिश्रम था ॥ आपने जो मेरे को शाप दियाहै उसके उत्तर में मैं भी आप को कहता हूं कि आपका स्थान भी सिंह और हाथियों की बस्ती बना रहेगा और आप का कोई भी शिश्य इस स्थान पर नहीं रहेगा जिससे मेरे स्थान का प्रताप बना रहगा ॥ वहां से जोरा भोरा हाथ बान्ध कर कांपते हुए खड़े थे, उनको स्वामी जी ने अभय प्रदान कर कहा कि " गुसाईं फिर भी साधु भेष में है इस लिए हम उसके बचन कुछ अंशमें ग्रहण करते हैं तुम लोग जाओ एक लकड़ का थम्भा साढ़े तीन हाथ लम्बा लाओ आज्ञा होते ही थम्भा लाया गया और उसको कुटी में गाढ़ने की स्वामी जी ने आज्ञा दी और स्वामी जी कहने लगे कि और चाहे हमारा कोई शिश्य यहां नहीं रहे किन्तु यह मौन व्रतधारी मोहन

दास (थम्भा) शिश्य यहां का चिरस्थायी महन्त रहेंगा ॥ यद्यपि यह पुरुष के माप जितना केवल साढ़े तीन हाथ का ही है तथापि किसी की सामर्थ्य नहीं जो इसको उखेड़ सके ॥ फिर जोरा भोरा के प्रति कहने लगे कि हमको संसार में बहुत ही उपकार के कार्य करनेहैं इस लिए थोरे समय के पश्चात् हम कुरुक्षेत्र में पण्डित रामचन्द्र के यहां अवतार धारेंगे ॥ हमारा नाम और रूप यही होगा ॥ यहां मेरी समाधि बना लेना और अन्तकाल तक तुम दोनों भी यहां निवास करते रहे और तुम्हारी समाधिएं भी यहां बनेंगीं ॥ तुम लोगों ने मेरे साथ बहुत ही प्रेम रक्खाहै अतः दूसरे जन्म में भी तुम दोनों मेरे साथ आकर मिलोंगे ॥ जब कि हम उदासीन मीहां साहिब के सम्प्रदाय से दीक्षित हो कर सिन्धु देश में श्री साधुबेला तीर्थ को प्रकट करेंगे , तब तुम दोनों हमारे शिश्य होकर हरिनारायणदास और हारप्रसाद नाम वाले रहोंगे एक कुठार की गद्दी पर बैठेंगा और एक महन्ती की गद्दी पर बैठेगा जो समय पाकर कुठारी के शिश्य वंश में ही महन्ती की गद्दी आ जावेगी ॥

आज तक स्वामी जी का उपरोक्त शिश्य मोहनदास भेड़िया मठ पर विराजमानहै ॥ स्वामीजी की तथा जोरा भोरा की समाधिएं भी बनी हुई हैं ॥ सुना जाताहै कि धूणी में लकाड़ियां हाथी आ कर डाला करते थे और झाड़ू लगाने का काम सिंह अपने पूछों से आकर करते थे ॥ किन्तु थोरे समय से यह बात बन्द हो गई है और धूणी में लकड़ियां तो अबभी स्वयं ही सरकती जाती हैं और सदैव धूणीप्रज्वलित रहतीहै ॥ और पांच छे साल के पेड़ जिनको स्वामी जी के चमटे का स्पर्श हुआ था वे भी अब तक धूणी साहिब में हैं और बराबर प्रति वर्ष उनमें आम लगत आते हैं ॥ अचम्भे की बात तो यहहै कि उन पेड़ों में पते शाखाएं आदि सब साल की हैं केवल फल आम का है ॥
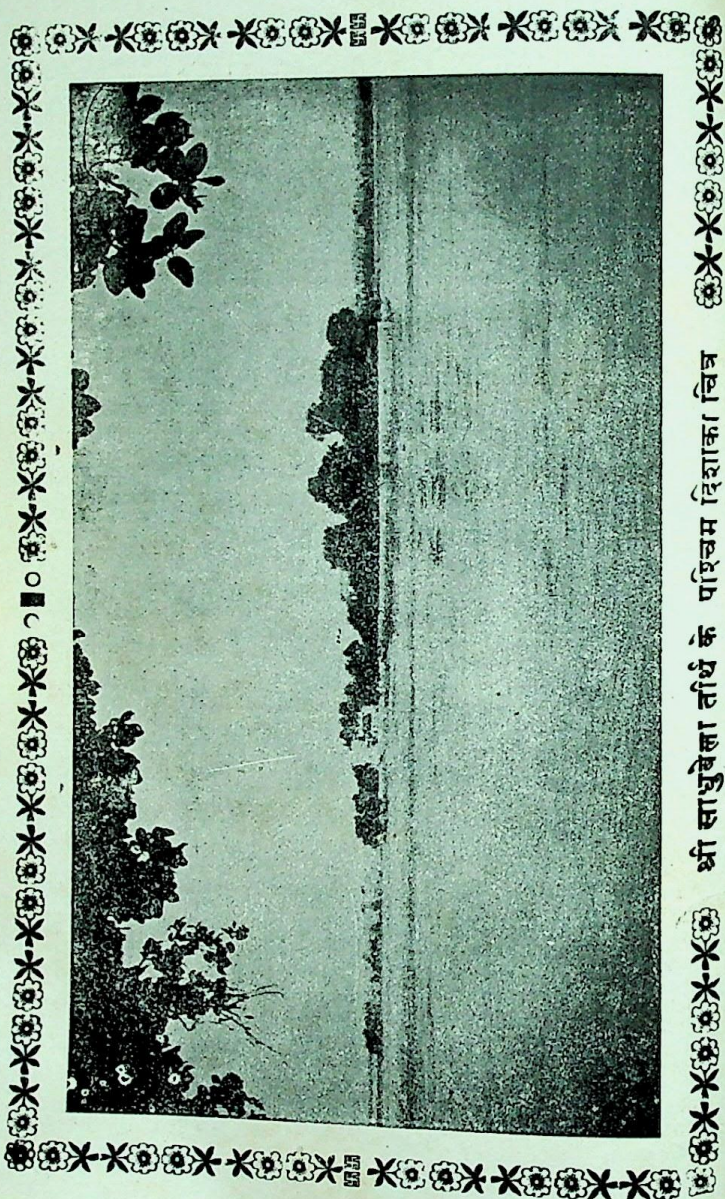
श्री साधुबेला तीर्थ के पश्चिम दिशाका चित्र

द्वितीय सर्ग

बाल्यावस्था

नी पतकी तीसरी युद्ध समाप्त हो गई थी और ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारत भूमी पर अधिकार जमता जाता था और योरप में प्रसिद्ध शूरवीर नेपोलियन बोनापार्ट (Napoleon Bonaparte) के जन्म लेने में अभी केवल छे वर्ष ही पड़े थे उसी समय में अर्थात् वि०सम्बत् १८२० कस्टाब्द १७६३ में श्री स्वामी वनखण्डी जी महाराज ने अवतार धारण किया॥ योगशास्त्र की सत्यता रखने के लिए, सच्चे साधुओं का आदर्श रूप बनने के लिए शताब्दों से यवनों के अत्याचारों से पीड़ित तथा अज्ञान सागर में पतित सैन्धवों (सिन्धु देश निवासियों) पर महती कृपा कर ज्ञान नौका पर चढ़ा के पार करने के लिए, एक नष्ट भ्रष्ट तीर्थ गंगा का पुनरुद्धार करने के लिए तथा अज्ञानान्धकार के साथ संग्राम जोटने के लिए, एक आत्मा ऐसे युद्ध स्थल (कुरुक्षेत्र) थानेश्वर ग्राम में प्रकट होता भया जहां कौरव पाण्डवों से आदि लेकर कई वीरों ने अपनी वीरता का परिचय दिया था॥ ऐसे पवित्र आत्मा तथा योग सिद्धियों के अधिपति बालक की बाल क्रीड़ा देखने का, सौभाग्य कुरुक्षेत्र नगर में

एक गौड़ ब्रह्मण को ही मिला ॥

पण्डित रामचन्द्र शर्मा ही उसी गौड़ ब्राह्मण का शुभ नाम था जिनके ग्रह में ऐसे बालक ने अवतरण किया था आप अच्छे विद्वान थे और कर्मकाण्ड में भी सुनैष्ठिक थे॥ साथ में उदारात्मा और दानवीर भी थे ॥ कैलास पति महादेव में आप की गाढ़ प्रीति थी ॥ सर्वगुण सम्पन्न हो ते भी पूर्ण युवावस्था तक आप एक कम सर्व सुख सम्पन्न ही थे ॥ एक कमी वह यही थी कि आपको पुत्र सन्तान नहीं होता था ॥ आप शास्त्रों के ज्ञाता थे अतः यह भी जानते थे कि :—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे नैव च नैव च ॥
धनं धान्यं च रत्नं च तत् सर्वं पुत्रहेतुकम्।
नभक्षितं यत् पुत्रेण तद्द्रव्यं निष्फलं भुवि ॥
पुत्रादपि परो बन्धुर्न भूतो न भविष्यति ॥

अत एव आपको सर्व सुख तथा अपनी विद्वता फीकी ही लगती थी ॥

मनोरमा आपकी धर्म पत्नी का शुभाभिधानथा ॥ ये ही ऐसे भावी बालक को अपना स्तन पान कराने की सोभाग्यवती हुई ॥ जैसे पतिव्रता स्त्री के लक्षण कहे हुएहैं वे सब इन में थे किन्तु पुत्रको गोदी में क्रीड़ा कराने से वञ्चित रहने का दुःख इनको भी बहुत ही विह्वल कर रहा था ॥

श्री स्वामी मेलाराम जी उदासी उन दिनोंमें एक प्रसिद्ध महात्मा थे – जो शतसंख्याक मण्डलेश्वर कहे जाते थे ॥ क्यों कि उनकी मण्डली में एक सौ साधु लोग रहते थे॥ वे अपनी मण्डली के साथ देशाटन करते २ किसी समय अपने गुरु द्वार कुरुक्षेत्र में आये॥ आप उसी समय के ऋद्धि सिद्ध सम्पन्न अद्वितीय महात्मा

थे॥ कई ग्रहस्थी तथा साधु लोग आपकी शरण में रहने से अपनी मनकामनाएं पूर्ण कर सकतेथे॥ ऐसे चरित्रों से विख्याति भी आप ने बहुत ही प्राप्त कर ली थी॥

पं. रामचन्द्रजी साधु सेवी तो पहले से थे ही किन्तु युवावस्था की समाप्ति होने तक भी जब उन्होंने देखा कि पुत्र सन्तान नहीं हुआहै तब वे इसी अभिलाषा से स्वामी मेलारामजी की शरण में जाने को उद्यत होते भए॥ वहां जाय के उन्होंने स्वामी मेलाराम जी को बड़ी श्रद्धा और प्रेम से अभिवन्दन किया और इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हे पूज्यपाद महात्मा श्री! मैं आपके दर्शन प्राप्त कर निःसंदेह अपने को अहोभाग्यी समझता हूं, आप जैसे महात्माओंके समक्ष में पुण्यात्मा ही आसकतेहैं॥ स्वामी मेलाराम जी पं० रामचन्द्र की श्रद्धा और भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उनको कहने लगे कि हे श्रद्धास्पद! आप बड़े ही सज्जन दीखतेहैं, आपकी कोमल वाणी ने हमारा मन प्रफुल्लित कर दियाहै हम चाहते हैं कि आप हम से कुछ मांगलेवे पं० रामचन्द्रजी कहने लगे कि हे पूजनीय स्वामीजी! इसमें कोई संशय नहींहै कि आप सब कुछ दे सकतेहैं किन्तु इस समय मेरी इच्छाहै कि आप अपने पवित्र चरण कमल हमारे ग्रह में पधार कर हमें पावन करें॥ स्वामी मेलारामजी तो उनकी बात मानने को पहले ही कह चुके थे अत एव सहर्ष उनके घर पर पधारे॥ पं० रामचन्द्रजी तथा माता मनोरमा ने स्मामी मेलाराम जी की शास्त्रोक्त विधि से पूजा की और उनका पादोदक स्वयं ग्रहण करके सारे ग्रहमें छिड़काया और बड़े प्रेम से उनको

भोजन भी कराया ॥ तत्पश्चात् कुछ पार्मार्थिक वार्तालाप के अनन्तर स्वामी मेलारामजी ने पं० रामचन्द्र को कहा कि आपकी श्रद्धा तथा साधुभक्ति अनिर्वर्णीयहै, हम बहुत प्रसन्न होवेंगे यदि आप हम से कुछ मांगोंगे ॥ पं० रामचन्द्रजी ने कहा कि हे देव ! आप सब कुछ जानतेहैं कि हम पुत्र सन्तान से आज तक वञ्चित ही रहेहैं शास्त्रों में पढाहै कि सत्पुत्र से ऐहिक और पार लौकिक दोनों सुख प्राप्त होते हैं ॥ यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो यही हमारी इच्छा पूर्ण करें ॥ स्वामी मेलारामजी कहने लगे कि हे ब्राह्मण कुलदीपक ! आपके ग्रहमें दो पुत्र होवेंगे किन्तु उनमें से पहला हमको देना ॥ तदनन्तर स्वामी मेलारामजी यथा योग्य रीति से वहां से बिदा हुए ॥

वि० सं० १८२० को प्रविष्टहुए पूरा सप्ताह ही केवल हुआथा और दुर्गाष्टमीमें एक दिन, श्री रामजयन्तीमें दोदिन तथा कामदा एकादशी में चार दिन पड़े थे अर्थात् चैत्र मास के शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथि को सोमवार के दिन रोहणी नक्षत्र में पं० रामचन्द्र के इक्कीस कुलों को तारने वाला, धर्म की ध्वजा फहराने वाला योग सिद्धियों के चमत्कार दिखाने वाला भावी बालक श्रीस्वामी मेलारामजी के वचनानुसार उसी गौड़ ब्राह्मण के घर में उत्पन्न होता भया ॥ इसमें अत्युक्ति नहीं होगी जो हम यों कहें कि पं० रामचन्द्र को इस दिव्य बालक के जन्म से इतना ही प्रमोद हुआ जितका राजा दशरथ को मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रके जन्म से हुआ था पं० रामचन्द्रजी ने बहुतसा द्रव्य प्रदान किया तथा सुयोग्य द्विजपण्डितों से इस अलौकिक बालक का जात कर्म संस्कार कराया गया तथा जन्म लग्नके अनुसार जन्म पत्रभीबनाया गया ॥ पाठकों के विनोदार्थ हम कुण्डली यहां भी देते हैं —

इनका संक्षपसे फलादेश दिखाने का भी थोरा सा कष्ट उठा लेते हैं —

नीचस्थितो जन्मनि यो ग्रहः स्यात्तद्राशिनाथोऽथ दुश्चिक्यनाथः
भवेत्त्रिकोणे यदिकेन्द्रवर्ती राजा भवेद्धार्मिक चक्रवर्ती ॥
केंद्रे शुभोदयैकोऽपि वली विश्वप्रकाशकः ।
सर्वे दोषाः क्षयं यान्ति दीर्घायुश्च भवेत्प्रभुः ॥

अर्थ- "जन्म स्थानमें जो कोई नीच ग्रह बैठा होवे उसके राशि का मालक अथवा तीसरे स्थान का मालक यदि त्रिकोणमें अथवा केन्द्र में बैठा होवे तो वह पुरुष चक्रवर्ती राजा या धार्मिक विश्व में प्रकाश करने वाला होताहै और उसके सब दोष नाश हो जातेहैं तथा वह बड़ी आयु वाला प्रभु होता है" ॥ यहां चन्द्रमाका ग्रह दशवें स्थान में पड़ा है जो बली ग्रहहै ॥

जन्म पत्रके साथ उनकानाम करणभी हुआ और चिरञ्जीवी "भालचन्द" उस बालक का नाम रखा गया ॥ यही बालक हमारे लोक परलोक का आश्रय और भावी सिद्धेश्वरहै ॥ दो वर्ष

के पीछे उस गौडवंशावतंस पं० रामचन्द्र को माता मनोरमाकी पवित्र कुक्षी से दूसरा बालक भी उत्पन्न हुआ जिसका नाम साधुराम रहा ॥

भालचन्द्र ने अपने नव जन्म दिन अर्थात् ९ वर्ष माता पिता का हर्ष बढाते हुए व्यतीत किये, उसके मुख कमल की ज्योतिमें दिव्य तथा ईश्वरीय भाव टपक रहा था अब वह समय आ गया था जब वे गुरुकुल - निवास योग्यथे ॥ पं० राम चन्द्रजी यद्यपि स्मामी मेलारामजी के वचन भूले नहीं थे तथापि उनके चित्तने नहीं चाहा कि ऐसा मनोहर बालक हमारे से सर्वदा के लिए बिछुर कर कहीं बन और झंगलों में जाकर अपना डेरा जमावे॥ किन्तु पराई वस्तु कहां तक अपनी हो सकतीहै अतः भालचन्द्र जिनकी वस्तु था उनके पास स्वयं ही जाता भया ॥ झंगल के रस्ते से हमारा चरित्र नायक बालक स्वामी मेलाराम जी के पास जाकर साष्टांग प्रणाम कर अति प्रेम तथा नम्रतासे प्रार्थना करने लगा कि हे गुरो वर्य्य ! इस शरणागत दीन बालक को कृपया अपनाइये, मेरे को गुरु दीक्षा देकर मेरी योग शक्तियों का विकाश करिए ॥ स्वामी मेलारामजी तो ऐसे भावी बालक को जानतेही थे अतः वि० सं० १८३० के वैशाख शुक्लातृतीयाको उनको "सत्य नाम" का मन्त्रोपदेश देकर चर्णांमृत पिलाय उदासीन सम्प्रदाय में लाया और कहने लगे कि "हे सुपुत्र! झङ्गलके रास्तेसे वृक्षों का खण्डन करता हुआ आयाहैं अत एव तेरा नाम वनखण्डी रखते हैं ॥ तू सिद्धियों से पहले ही सम्पन्नहै अत एव न तो तेरे को किसी विशेष विद्या पढ़ने की आवश्य कताहै और न बहुत काल समीपतामें रहनेकीही आकांक्षाहै ॥ थोरा समय यहां रहकर फिर कुछ साधुओं को साथ लेकर तीर्थ यात्रा के मिससे अपने तपो बल तथा योग शक्तियों का
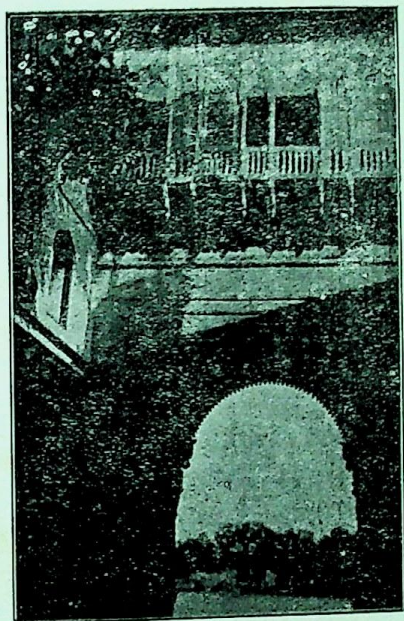
राज्य घाटकी ढयोढी संगमरमरकी
पूर्व दिशाका चित्र।

प्रभाव दिखाता हुआ पाञ्चभौतिक जीवों के उपकार में उद्यत हो जाना ॥ "

श्री स्वामी वनखण्डीजी स्वामी मेलारामजी के ज्येष्ठ शिष्य थे

तृतीयसर्ग

तीर्थयात्रा

मी वनखण्डीजी वि०सं० १८३० से १८३६ तक अपने गुरूजी के मण्डलीके साथ ही फिरते रहे तथा विद्या अध्ययन करते हुए योगभी सीखते रहे फिर ३६ के कार्तिक मास में एक योगीके संगमें निकल पड़े जिसके साथ साढे तीन साल रहे फिर वि०सं० १८४० में हरिद्वार कुम्भपर गए जहां उसी योगी राज का सङ्ग छूट गया कुम्भ करके फिर अपने गुरुजी से मिले गुरुजी के साथ मिल कर कुरुक्षेत्र गए और योग सीखते रहे और उसी ही ४० के वि०सं० में गुरु जी की आज्ञा से कुछ साधु साथ में लेकर चार धामों की यात्रा को निकले।

वि०सं० १८४१ में श्री स्वामी मेलारामजी के बड़े गुरु द्वार फुलेली गाम (रिआस्त पटियाला के पास) में पहले २ गए फिर हरिद्वार होते और वि०सं० १८४२ में प्रयागराज के माघ मासके कुम्भ
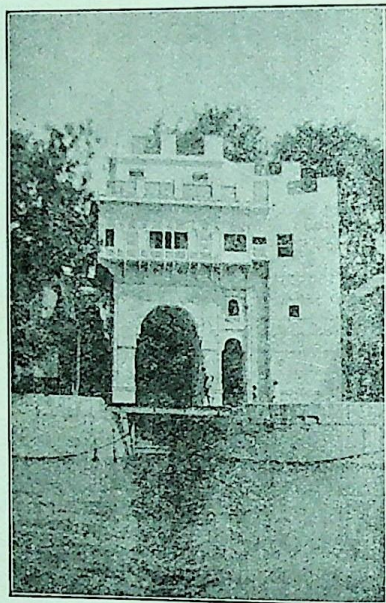
राज्य घाट की ढयोढी संगमरमरकी
पश्चिम दिशाका चित्र।

पर गए, मण्डली साथ में थी॥ वहां से होकर बनारस, काश्मीर तथा बीचकी यात्रा करते हुए अमरनाथ को सिधारे जहांसे लौट कर फिर काश्मीर में आए और वहां मण्डली छोड़ दी॥

वि०सं० १८४३ श्रावण—शुक्ला पूर्णमासी को सिद्धस्थान से सिद्धों ने दर्शन कराने की इच्छा से दो साधु भेजे तब मण्डली छोड़ कर एकाकी सिद्धाश्रम को पधारे जहां सिद्धों ने स्वामीजी का बड़ा ही आदर सत्कार किया और ८ साल अपने पास रक्ख दिया वहां से वि०सं० १८५२ में सिद्धों के साथ हरिद्वार कुम्भ पर गए वहां गुरुजी के मण्डली को सहित दर्शन किए फिर ५२-५३ के साल सिद्धाश्रम में रहे वहां वि०सं० १८५४ के श्रावणी पूर्णमासी को अमरनाथ की यात्रा को गए जहांसे भाद्रमास में लौट आए झेलम नगर (वितस्ता नदी के किनारे) वजीराबाद आए और पञ्जाबकी यात्रा करते २ लाहौर अमृतसर होते घूमते हुए माघ मासमें प्रयाग के कुम्भ पर गए वहां गुरुजी के शुभ दर्शन भी होते रहे॥ वि०सं० १८५५-५६ में चित्रकूट और उसके आस पास अटन करते रहे॥

वि०सं० १८५७ में गुरु नानक रीठा में आए वहां एक मास रहे और फिर काठ गुदाम होते हुए बद्रीनाथ की यात्रा की वहां गुप्त पहाड़ों में अनेक सिद्ध लोगों से मिलते रहे ५८—५९ सालभी वहां ही बिताया फिर ६० में हरिद्वार से होते हुए श्रावण मास में अमृतसर आये वहां छः मास रहे तथा पंजाब की यात्राकी फिर वि०सं० १८६१ में हरिद्वार आये जहां कनखल वाले बाबा मनोहरदासजी उदासीन् और कई अन्य साधु स्वामी जी से योगाभ्यास सीखते रहे वहां तीन साल रहे और वि०सं० १८६४ का वैसाख वाला कुम्भ वहां करके अपने दो गुरु भाई और अभ्यागत बाबागंगारामको साथ लेकर मण्डली बांध कर आसाम देशकी ओर बढते भए मथुरा मुरादाबाद, नैमिषारण्य,

सीता मड़ी, जनकपुरि, अयोध्यापुरि, काशी, हरि हर क्षेत्र, गया जी, तथा वर्दवान, होते हुए औगंगा सागर कलकत्ता पहुंचे फिर ढ़ाका आकर आसाम गोहाटी में प्राप्त होते भए ॥

अब हमारे पाठक यात्रा प्रसंग में मन लगाये २ शायद् थकित हो गए होंगे अतः विश्राम दिलाने के लिए स्वामीजी के सिद्धिका थोरा सा वर्णन कर देतेहैं ॥ स्वामी जी अपनी मण्डली के सहित आसाम देशमें विराजमान रहि कर श्री मद्भागवत का एकादश स्कंधका एक अध्याय और गीता व गुर उदासीन कौमी वाणी का पाठ नित्य करतेथे तो आषाड़ शुक्ला पूर्णमासी भी आ गई इसी को ही व्यास पूजा कहा जाताहै जब सब महानुभाव खास कर विद्यार्थी वर्ग अपने गुरु जनों की विशेष रीति से पूजा करतेहैं ॥ इसी त्योहार पर आम्ररस का नैवेद्य देने का बड़ा ही पुण्य-फल कहा गयाहै किन्तु मुश्किल की बात यह थी कि वायू आदि के दोष से उस ऋतु में वहां आम हुए ही नहींथे अतः उपलब्ध नहीं हो सकतेथे अब हमारे स्वामी जी के मण्डली के साधु इस वार्षिक महा पर्वकी पूजा के अङ्ग भङ्ग होने पर अत्यन्त चिन्तातुर हुए अब वे मनमें भले प्रकार ठान स्वामी जी के आगे यह अपनी उत्कण्ठा प्रकट करते हुए कहने लगे कि हे गुरो! आपकी योग शक्तियों के आगे यह तुच्छ काम पूरा होना कोई बड़ी बात नहींहै, आप पूर्ण दयालु हैं हमारी धृष्टता क्षमा करें और पूजनार्थ आम कहीं से मंगा देवें ॥ स्वामी जी ने एक गुटिका निकाल कर एक साधु को देकर कहा कि इस को मुखमें रखने से तू एक क्षणभरमें देहली नगर में पहुंच जायगा, वहां कई बड़े वग़ीचेहैं उनमें से कहीं से भी यथेष्ट आम ले आना ॥ इस योग गुटिका का यहभी प्रभाव रहैगा जो तू तो सब को देखैगा और तेरे को कोई नहीं देखैगा ॥ सबके देखते २ वह साधु वहां लुप्त हो गया और देहली में जा का वारद हुआ वहां से यथा-

भिलषित आम लेकर थोरी ही देरमें आसाम में आ निकला॥
आगामि दिन पर सब साधुओं ने स्वामी जी की पूजा की और
आम्र रस का प्रसाद लेकर सब स्वामी जी की यौगिक शक्तियों
की प्रशंसा करते हुए ईश्वर गुणानुसार गाने लगे॥ आसाम देश में
स्वामी सालभर रहे अर्थात् वि०सं० १८६५ सारा वहां विताया
वि०सं० १८६६ में पर्शु राम कुण्ड, बालवा कुण्ड, कारुदेश,
कामाक्षि देवी के दर्शन करते २ मकसुदाबाद आए जहांसे
फिर भागलपुर आकर मधुसूदन भगवान के दर्शन किए और
फिर मुंगेर से होते हुए वि०सं० १८६६ में प्रयागराज के कुम्भ
पर आए जहां स्वामी वनखण्डी जी अपनी मण्डली के साथ
थे वहां से उनके गुरुजी श्री स्वामी मेलारामजी भी अपनी
मण्डली सहित पधारे हुए थे॥ वे अपने शिश्य को ऋद्धि—
सिद्धि सम्पन्न योग से सुयोग्य निष्ठा वाला देख कर बहुत ही
प्रसन्न हुए॥ वि०सं० १८६७ में नेपाल की शिवरात्रि की वहां से
मुक्ति नाथ गए वि०सं० १८६८ में फिर आसन सोर से होते
हुए कटक आए जहां से फिर जगन्नाथ पुरी गए फिर ब्रह्मपुरा
हो कर वि०सं० १८६९ में गोदावरी के कुम्भपर आए जहां फिर
गुरुजी के मण्डली सहित दर्शन हुए॥ आपभी समण्डलीकथे॥
वि०सं० १८७० में उज्जेन कुम्भ पर आए पूर्व न्याई ईहाभी
अपने गुरूजी के दर्शन हूए वहां से भोपाल और हैद्राबाद
दक्षिणसे होते हुए पक्षी तीर्थ बालाजी शिवकांची विष्णुकांची
मद्रास आये—७१ का सम्वत मद्रास प्रान्त में ही व्यतीत कीया
वि०सं० १८७२—रामेश्वर संगलद्वीप (लंका–सीलान) मलबार
पद्मनाभ जनार्दन और जंगबार गए॥ वि०सं० १८७३ में भारत
वर्ष से बाहर अदन, गुवादर बन्दर, मस्कतबंदर साताद्वीप
को भी गए वहां से फिर वि०सं० १८७४ में भारत वर्षमें आकर
कलीकट, बैंगलोर, मैसूर, किष्कन्धा सोलापुर, पंडरपुर,

और पूना होते हुए बम्बई आये फिर गोवा और दीव बन्दर होते हुए वि०सं० १८७५ में बम्बई में आए॥ स्वामी जी जहां कहीं जाते थे वहांकुछ न कुछ उपकार अवश्य करते ही थे॥ कई ग्रहस्थी लोग शरण में आकर सदुपदेश ग्रहण कर ऐहिक तथा पारलौकिक सुख सम्पादन करते थे॥ बम्बई के निवासियों ने वहुत ही चाहा कि स्वामी जी सदैव यहां रहें किन्तु स्वामी जी केवल वहां छः मास ही रहे और विशेष आग्रह होने पर अपने दूसरे नम्बर— छोटे गुरु भाई बावा गुरुमुखदास जिसको थोरा सा योग मार्ग का ज्ञान बता दिया था और थोरी वहुती सिद्धियां भी कमा सकता था उसको अपनी मण्डली सहित वहां सदैव बम्बई में रहने को कहा और अपने साथ केवल दो साधु एक अपना तीसरे नम्बर का छोटा गुरुभाई बावा सन्त दास और दूसरा अभ्यागत साधु गंगाराम को साथ लेकर सिन्धु देश को पावन करने का विचार करते भए॥ वि०सं० १८७६ में डाकोरजी होते दाऊद गोदड़ा की झाड़ी होते बीचकी यात्रा करते आबू आये वि०सं० १८७७ जूनागढ़ आये शिवरात्रि गिरिनार में की फिर प्रभासादि होते वि०सं० १८७८ में सुदामा पूरी होते फिर दोनों द्वारका में आए जहां से मांडवी नारायण सरोवर मगरभीम होते हुए सिन्धु देशमें पदारोपण करते कराची गये कुच्छ दिन रहि वहां लोगोंको उपदेश रूपी अमृत पान कराया॥

चतुर्थसर्ग

सिन्धु देशागमन
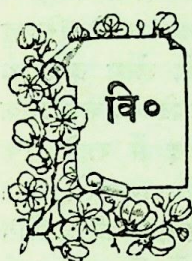
सम्वत १८०८ में सिन्धु देशमें कराची ठट्टा में महाराज गुरू श्रीचन्द जी की धूणी परि निमस्कार कीया फिर कोटरी से होते हुए दिवाली है द्रावाद में की ॥ इस समय यहां हैद्रावाद में विशूची (हैज़ा कालरा Chollera) की अति प्रचण्ड व्याधि अपनी मृगया में मत्त थी। नित्य कई मनुष्य इस पिशाचनी के पञ्जा लगने से इस संसार की यात्रा समाप्त कर देते थे ॥ यह दशा देख स्वामी जी का चित्त द्रवीभूत हो गया और ऐसे दुःख- पीडित जनों के दुःख छुड़ाने में यथाशक्त आयास करने का प्रयत्न करने का निश्चय करते भए—

वास उसी में है विभूवर का है बस सच्चा साधु वही ।
जिसने दुःखियों को अपनाया बढ़ कर उनकी बांह गही ॥
आत्म स्थिति जानी उसने ही परहित जिसने व्यथा सही ।
पर हितार्थ जिनका वैभव है, हैं उनसे ही धन्य मही ॥

स्वामी जी के ऐसे विचार करने से ही नगर के लोग उन

के सत्कारार्थ मिलने आए और अपने दुःख निवृत्तिकी प्रार्थना करने लगे ॥ स्वामी जी तो पहले से ही तय्यार थे सो उन्होंने गाय का दूध मन्त्रित करके विभूती के साथ उनको दिया और कहा कि इसमें गंगा जल मिलाय के सारे नगरमें परिक्रमा रूप से सेंचन करो ऐसा करने से ईश्वर कृपा से यह आपदा हट जायगी ॥ यथोक्ति रीति से सब लोग एकत्र होकर बड़ी श्रद्धा और प्रेम से यथा निर्दिष्ट कार्य कर आए। दूसरे ही दिन कल्याण हो गया बिमारी का नाम निशान न रहा और जो लोग नगर का परित्याग कर गए थे वे लौट कर आने लगे और नगर बसता गया। ऐसे उपकार से स्वामी जी का नाम सारे सिन्धु देश भर में ख्यात हो गया, बहुत दूर दूर के लोग दर्शनार्थ आते रहे; स्वामी जी भी सब को हरिनाम उपदेश देकर उनके क्लेश काटते रहे ॥ अब स्वामी जी को हैद्राबाद में रहते एक साल हो गया अतः वहां से आगे बढने का विचार करते भए॥ एक दिन हैद्राबाद के सब नगर नायकों से स्वामी जी प्रार्थित होते भए कि आप यहांही सदैव के लिए रहें किन्तु स्वामी जी ने कहा कि अभ्यागत साधु गंगाराम और अपने छोटे गुरु भाई सन्तदास को यहां छोड़ देता हूं और मेरेको शास्त्रों में माननीय मैनाक पर्वत के खण्ड, कोटि तीर्थ को नाम रख कर प्रकट करनाहै क्यों कि वेदों तथा शास्त्रोंमें इस सिन्धु तीर्थ की बड़ी महिमा वर्णितहै सिन्धु गंगा जिस में सात गंगाएं आकर मिलतीहैं उसका महत्व भी शास्त्रों में कई जगह आया है। यवनों के राज्य से पहले यहां पर कुम्भ का मेला भी लगता था। अत एव मेरी प्रबल इच्छाहै कि अपनी शेष आयू ऐसे पुण्य स्थल पर बिताऊं॥ ऐसे वचन सुन कर कोई आग्रह नहीं कर सका और स्वामी जी भी सबको आशीर्वाद देकर बिदा होते भए। साधु गंगाराम जी स्वामी जी के अत्यन्त प्रेमी थे उनकी इच्छा वियुक्त

होने पर न थी स्वामी जी नित्य प्रातः काल दर्शन देने का वरदान देकर तथा अपने पादुके स्थापित कर, उनके सेवा का भार उनके ऊपर रख कर वि०सं० १८७६ की दिवाली कर एकाकी आगे को प्रस्थान करते भए। आते २ वि०सं० १८७६ में खैरपुर आये खैरपुर में एक पक्ष रहे और फिर रोहिड़ी में आए जो सिन्धु देश के पूर्व भागमें एक प्राचीन नगरी सिन्धु गंगा के तीर पर आज तक भी स्थितहै॥ यहां आने से स्वामी जी से प्रथम परिचित होने का सौभाग्य रोहिड़ी निवासी सेठ घुमणमल और रीझूमल को मिला; वे दोनों बड़े ही भावुक सज्जन थे और स्वामी जी के रोज दर्शन से अपने को कृत्य २ मानेने लगे और उनसे गुरु दीक्षा लेकर उनके सेवक भी बने॥ तुलसीराम नामक एक रोहिड़ी निवासी प्रेमी स्वामी जी की निरन्तर सेवा में रहताथा हम आगे चल कर देखेंगे कि यह महात्मा स्वामीजी का ज्येष्ट शिश्य होगा॥ स्वामी जी रोहिड़ी में चार मास रहे॥

पंचमसर्ग

श्री साधुबेला तीर्थ में स्थिति

रे दिनों के पश्चात् उपरोक्त सेठ घुमणमल के भाई हासानन्द के पुत्र दयामल का चूड़ाकर्म संस्कार (झंड) होने वाला था स्वामीजी ने सेठियों से कहा कि यहशुभ कार्य श्री सिन्धु गंगा के मध्य वर्ती मेरु जातीय पहाड़, कोटि तीर्थ नाम रख कर जहां परि कुशावर्त घाट परि चक्र तीर्थ भी नाम रखिना है सिन्धु सरस्वती गंगा में जो टायूहै वहां करो सेठियोंने स्वामी जी का कहना सहर्ष स्वीकार किया और स्वामी जी के साथ सब मिलकर नाव में बैठ कर श्री साधु बेला तीर्थ पर आए और लोग तो अपना सब कार्य कर चले गए और स्वामी वनखण्डी जी महाराज वहां ही अपने प्रेमी सेवक तुलसीराम के साथ विराजमान होते भए। वह शुभ दिन वैशाख कृष्णा द्वितीया का था जब कि स्वामी जी वि०सं० १८८० में वहां धूनी लगाकर विराजित होते भए। यहां तीन बट वृक्षों को अपने हाथ से लगाकर नीचे बैठ कर इन्होंने श्री गुरु बाबा श्री चन्द्र देव की आराधनार्थ तपस्या
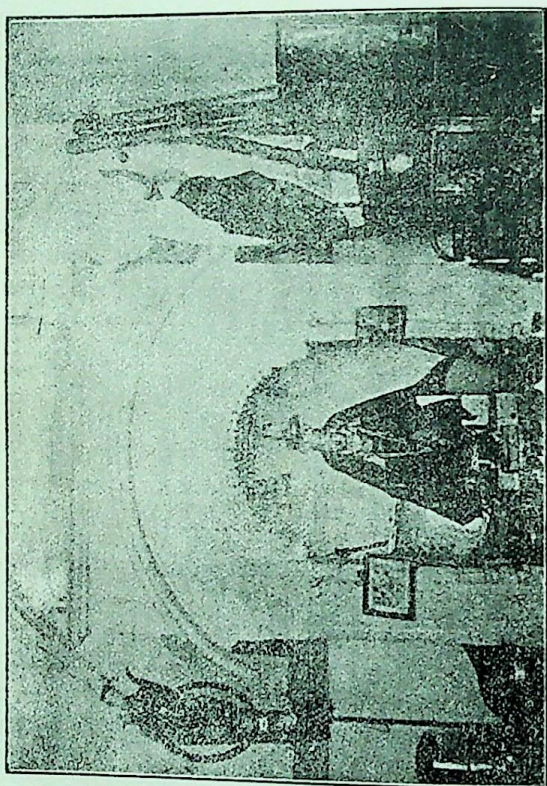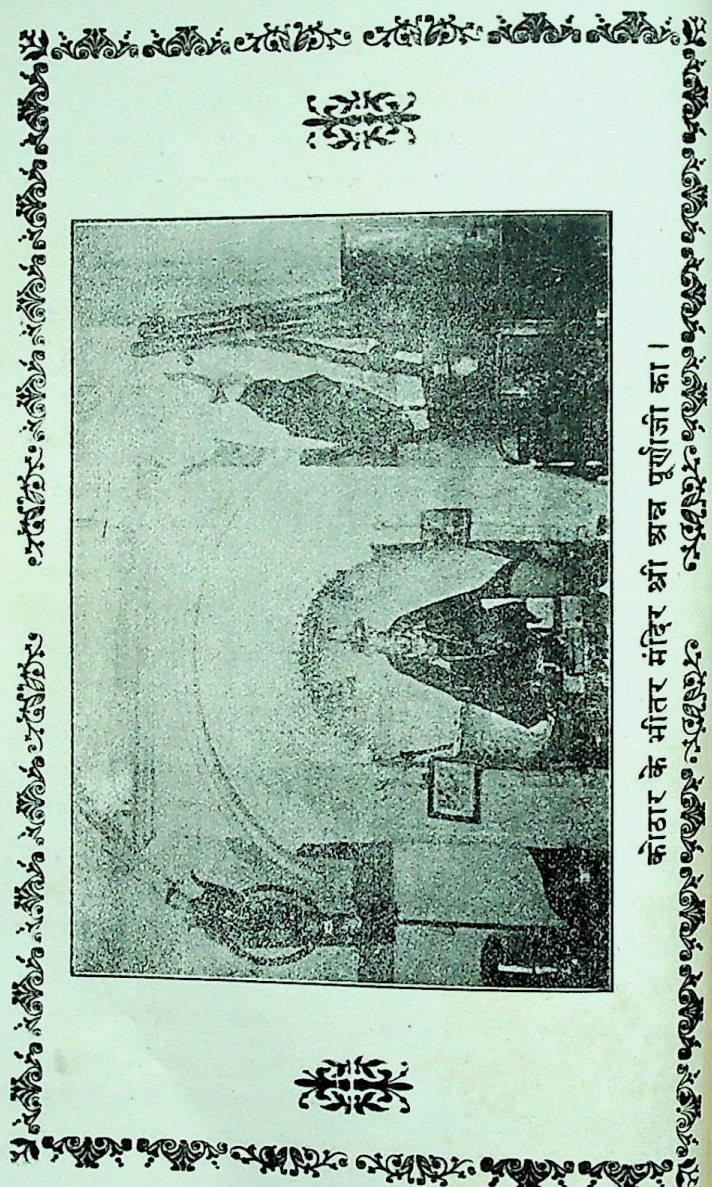
कोठार के भीतर मंदिर श्री अन्न पूर्णाजी का ।

की जिन्होंने साक्षात् प्रकट होकर उनको दर्शन दिया और कई वरदान देकर आज्ञा करते भए कि हे वत्स ! इस तीर्थ स्थान की अधिष्ठात्री देवी अन्नपूर्णा स्थापित करो, इस लिए उसकी उपासना तेरे लिए आवश्कीय है उसको प्रसन्न कर, यों कहते हुए वे अन्तर्धान हो गए ॥

अब स्वामी जी अन्नपूर्णा देवी की उपासना में लगे। दर्शन होने में क्या विलम्ब था, वे समाहित चित्त तो पहले से हीथे। नव दिन के अनुष्ठानसमाप्त होने पर देवी भी " वरं ब्रूहि ! वरं ब्रूहि !! कहती हुई प्रकट होती भई। स्वामी जी ने दिल खोलके देवीकी स्तुति की और अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए कहा कि हे जगज्जननी! मेरी इच्छाहै कि इस तीर्थ स्थान पर अन्नका अक्षय दान होता रहे जहां साधु, महात्मा, विद्यार्थी, अतिथी, यात्री आदिक सब लोग यहां भोजन कर सदैवतृप्त होते रहें और अपनी मनोऽभिलाषाएं पूर्ण करते हुए आपके गुणानुवाद गाते रहें। देवी अन्न पूर्णा ने एक हरड़ का कमण्डल देकर स्वामी जी को कहने लगी कि हे योगाचार्य्य ! जब तक लोगोंकी श्रद्धा भक्ति बनी रहेगी तब तक इस कमण्डल के प्रभाव से अन्न की कभी भी क्षति नहीं होगी, जितने भी लोग यहां आएंगे सब खा पी कर तृप्त हो जायेंगे। ऐसे वचन उच्चारती हुई जगदम्बा देवी अन्नपूर्णा गुप्त रूप से श्री साधु बेला तीर्थ में निवास करती भई। स्वामी जी ने उसी ही दिन कमण्डल की पूजा प्रतिष्ठापन कर कुमारी भोजन कराया। सक्खर, भक्खर, रोहड़ी आदि समीप वती नगरों की यावत् कन्याएं वहां आकर एकत्र हुई सबको भोजन कराया गया ॥ यह प्रणाली कुमारी भोजन की आज तक चली आतीहै प्रति वर्ष दोवार नवरात्रों के अष्टमी पर दुर्गा देवी के उपलक्ष में बड़ा भारी कुमारी भोजन कराया जाताहै ॥

तत्पश्चात् प्राण प्रतिष्ठा से गणेश; हनुमान, सत्यनारायण, पिपलेश्वर, सिद्धेश्वर, वटेश्वर आदि देवताओं की भिन भिन स्थानों पर स्थापना की॥ उस तीर्थ स्थान का साधु बेला (श्री गुरू बनखण्डी जी महाराज साधों को बहुत रखतेथे इस कर इसका आपने) नाम रक्ख दीया और घाटों की रचना कराके उनके निम्नालेखित नाम रखते भए यथा १ राज घाट २ वरुण घाट ३ गौ घाट ४ देवी घाट ५ हरिद्वारघाट ६ गणेशघाट ७ रामघाट ८ कुशावर्त घाट ९ सरस्वती घाट १० सूर्य घाट ११ विष्णुघाट १२ शिवघाट १३ ब्रह्माघाट १४ दुःखभञ्जनी घाट १५ त्रिवेणी घाट; १६ यमुनाघाट १७ भैरवघाट १८ यमघाट और १९ कुबेरघाट॥ तत्पश्चात् गुरु मन्दिर की स्थापना की जिसमें गुरु ग्रन्थ साहिब (उदासी नों की कौमी बाणी) जी पधराए गए॥ इन सब मन्दिरोंके दर्शन करने तथा घाटों पर स्नान करने से इतना ही पुण्यहै जितना अन्य तीर्थों का कहा गय है॥

स्वामी जी को अब यहां आए दो वर्ष हो गए थे वि०सं० १८८२ में गोदावरी कुम्भ पर गए और अपने गुरू जी का दर्शन कीया तथा वि०सं० १८८६ श्रावण मासमें अमरनाथ गये साथ में गुरमुखदास जी गुर भाई (बंबईवाले) थे और वि०सं० १८८७ फिर दूसरे सालभी अमरनाथ गये साथमें अपनां चेला विशनदास चार साधू अभ्यागत साथमें थे और महन्त श्यामदास (खट वाली धर्मसाल शिकारपुर वाले साथ में गये थे वि०सं० १८८८ में हरिद्वार के कुम्भ (इस लिए एकदो साधु श्रीसाधुबेला तीर्थ में छोड़कर और सात आठ साधु अपने साथ लेकर) पर गए वहां अपने गुरुके मण्डली सहित दर्शन किए लौटते मथुरा वृन्दावन, गोकुल आदि तीर्थों से होते हुए श्री साधु बेला तीर्थ में वि०सं० १८८८ में लौट आए॥ वि०सं० १८९९ में भी स्वामीजी दश बारां साधों को लेकर वि०सं०

गणेशघाट के पास मन्दिर श्रीगणेशजी ऋद्धि, सिद्धि, सहित।
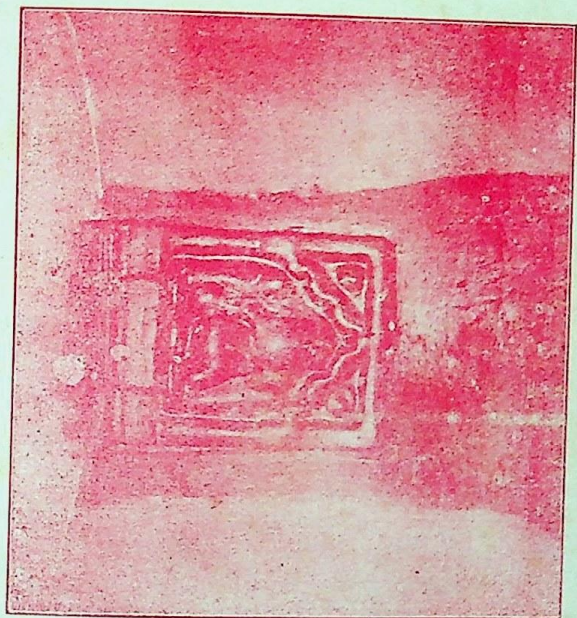
१६०० का हरिद्वार कुम्भ कीया छावनी बना कर रहेथे परमहंस अवस्था को धारण कीया अपने गुरूके मण्डली सहित दर्शन कीए अखाड़ मास में श्री साधु बेला तीर्थ में पहुंच गयेथे विष्णु दास शिश्य सदा साथ हार यात्रा में रहिते थे ॥

वि०सं० १६०८ प्रयाग अर्ध कुम्भी थी स्वामीजी मुल्तान, वाबे नानकजी के देहिरे होते गये लौट ते हरिद्वार, कुरुक्षेत्र परि ग्रहिण सूर्य का कर मुल्तान से होते आये साथ में बड़ा चेला विशनदास, दो अभ्यागत साधू थे ॥

श्री साधु बेला तीर्थ में पधारे जब स्वामी जी को बीस वर्ष हो गए और इसी बीच में वे अपनी सिद्धियों का विकाश कर संसाराग्नि—प्रदग्ध चित्त वालों को आत्मक उन्नती के साधन बता कर उन्हें शांत चित्त करते भए ॥ वि०सं० १६०० (क्र. अ. १८४३) में अंग्रेज़ों के राज्य की विजय पताका फहरा रही थी और मीरों का अब राज्य पर कोई अधिकार नहीं था। पहला राज्य कर्मचारी जो यहां आया उनका नाम कैप्टन पैङ्क वेल्स (Capt: Pank Wales) था। कलेक्टर के भी अधिकार इन्हीं को थे। वे जब सक्खर शहर में नियुक्त होकर आए और नदी के मध्य में श्री साधु बेला तीर्थ दृष्टि गोचर हुआ तब मनमें विचार करने लगे कि यदि इस स्थिल पर मेरा बंगला बन जाय तो अच्छा हवादार और सुन्दर रहेगा ॥ दूसरे ही दिन कारीगर मजूर लोग साथ में लेकर वहां गया और इमारत बनाने की उनको आज्ञा देताभया। दिनको काम करके वे लोग रात्रि को भी वहां ही रह गए और दूसरे दिन ऊठके देखा कि दिवारें आदि जो कुछ बनावट की थी वे गिरी पड़ी थी। पैङ्क साहिब को जब इस बात का पता लगा तब उसने कहा कि यह साधु मेरी इच्छा के प्रतिकूलहै और ये हिन्दू कारीगर लोग भी उससे मिले हुए हैं अत एव दूसरे दिन मुसलमान कारीगरों को काम पर भेजा

किन्तु तीसरे दिन पर भी वही दशा देखी गई जो गत दिवस पर हुई थी। फिर पङ्क साहिबने सोचा कि येहिन्दू अथवा मुसलमान इस साधु से मिले हुएहैं और मेरा रहना यहां पसंद नहीं करते हैं इस लिए उसी दिन काम कराके रात्रि को गोरे सिपाही पहरे के लिए नियत कर दिए। किन्तु इनके रहते हुए तो और भी अधिक आश्चर्य जनक घटना हुई जो निर्मित दिवारें आदि तो गिर गई किन्तु ईंटें चुना आदि भी वहां से उड़ गया जगह ऐसी बन गई मानों किसी ने झाड़ू लगा दिया हो। पङ्क साहिब के तो छके ही छूट गए अपने मनोरथ की असिद्धि देख कर इस निश्चय पर ठहरा कि यह साधु कोई जादूगर दीखताहै अतः जब तक यह यहां से नहीं जावेगा तब तक कार्य सिद्ध नहीं होगा। अपने मनमें ऐसी ठान के उसने स्वामी जी को वहां से चले जाने के लिए भी कह दिया। स्वामी जी तो उसके कहने मात्र से चम्पत हो गए। महात्माओं को सताने वाला अवश्य ही अनिष्ट को प्राप्त होताहै इसी में किसी को भी संशय नहीं होना चाहिए और ऐसे ऋद्धि साद्धि सम्पन महात्माओं के साथ हाथ फंसाने वाले की तो बात ही क्या करनी चाहिए।

रात्री को जब पङ्क साहिब बाल बच्चों सहित सक्खर शहर में अपने घर में सो गया तब आधी रात को स्त्री समेत उसको ऐसी व्यथा जान पड़ी जिससे वे दोनों अत्यन्त तड़फ रहेथे। यह पीड़ा बढ़ती ही गई; क्या करें? रात्रि के समय में भृत्य वर्ग सब निद्रा देवी की गोद में चले गए थे, कईयों को जगायाभी किन्तु वैद्य उसी समय कहां से आता? बहुत ही बिचारे तड़फते २ इस आकस्मिक शूल का निदान विचारने लगे कि किस कारण से इस दुःख ने हम दोनों को आक्रान्त कियाहै। कोई ऐसा अपथ्य सेवन भी नहीं कियाहै तो भी यह व्यथा बढ़ती क्यों जातीहै? इस प्रकार जब वे तड़फते तड़फते हार गए तब स्त्री

को स्मरण आया कि निःसंदेह यह व्यथा उसी साधुकी करामात है जिसके डेरे पर साहिब अपना बंगला बना रहे थे; उसी महात्मा को दुःखाने का ही यह परिणाम है। पङ्क साहिब को भी यह बात जी से लगी और पश्चात्ताप करके कहने लगा कि प्रातः काल होते ही उसी महात्मा को ढूंढके क्षमा मांगूगा और उस स्थान पर कोई छेड़ छाड़ भी नहीं करूंगा। ऐसी बातें करते २ उनकी पीड़ा कम होती गई और प्रातः काल ने भी पदारोपण कर लिया। साहिब बहादुर अपने अनुयायी साथ में लेकर हमारे स्वामी जी के खोज में निकल पड़ा; शाम होते तक स्वामी जी को टटोलता रहा किन्तु स्वामी जी के मिलने में अब किंचत देरी ही थी। निराश होकर मिस्टर पङ्क घरको लौट आया, वहां फिर उसको एक युक्ति सूझी, सब नगर नायकों को उसने बुला लिया और आर्डर (आज्ञा) देताभया कि साधुबेला वाले महात्मा को अगर कल शामतक नहीं ढूंढ लाओंगे तो सबकोकड़ी सज़ा दी जावेगी। ऐसे कह कर रात्रि की सब दशा उन को विस्तार से वर्णन कर सुनाई। लोगों ने उसी समय से ही स्वामीजी का अन्वेशण किया किन्तु जब उनके भाग्य में भी निराशा के चिह्न आने लगे तब वे सब एक स्थान पर एकत्रित होकर ईश्वर के गुणानुवाद और स्वामी जी का कीर्तन करने लगे। रश्ममाली दिनेश को अस्ताचल का वास लेने में अभी दो घण्टों का ही केवल विलम्ब था जो स्वामी जी अपने भक्तों को राज्य दण्डसे बचाने के लिए वहां स्वयं ही प्रकट हो गए। सबके मुख से स्वतः ही जय जय का शब्द निकलने लगा तथा कैप्टन साहिब भी सूचित होने से ही सहसा स्वामी जी के चरणों पर गिर कर क्षमा मांगने लगे। स्वामी जी ने उसको पूर्णतया पश्चात्ताप किया हुआ देख उसके अपराध क्षमा कर दिए। तत्पश्चात् पैङ्क साहिब ने स्वामी जी को स्थान का परवाना भी लिख दिया तथा सब

मिल कर स्वामी जी को बाजों गाजों से श्री साधु वेला तीर्थ पर ले गए।

ऐसे अद्भुत चरित्रों से स्वामी जी का यश अतिविस्तृत हो गया। कई राजा महाराजा देश देशान्तरों से आकर स्वामी जी के दर्शन प्राप्त कर अपने मलिन हृदयों को परिपूत करते थे। वि० सं० १९०० इसी साल श्री स्वामीजी को हेद्रावाद सिन्धु में गङ्गादास अभ्यागत साधू जिसको टिकाय आये थे वह देव लोक होगया था उसके भंडारे परि स्वामीजी को मनाइकरले गये थे लौटते मांझादा लाड़काणां में कुछ दिन रहे फिर अपने तीर्थ में आये और सिन्धु देशके मीर जो इस समय अंग्रेज़ों से पराजीत हो चुके थे उनका एक मुख्य वज़ीर दलपत सिंह जो श्री स्वामी जी के दर्शन करने रोज आता था वह अपने ग्रह परिजन का त्याग कर स्वामी जी की शरण में आया और उनसे दीक्षा लेकर साधु होने की कांक्षा करता भया। वि०सं० १९०० की शरद् पूनम को वह उदासीन सम्प्रदायमें लाया गया और स्वामी जी ने हरि नारायणदास जी उनका नामधेय रख्या। निरन्तर स्वामी जी की सेवामें तत्पर रहने से हरिनारायणदासजी स्वामी जी के पूर्ण कृपा पात्र बन गए अत एव उसी साल में ही कार्तिक वदी १० को स्वामी जी ने उनको कोठार की गद्दी पर विठाया इससे पहले वि०सं० १८८० वैशाख वदी २ से लेकर वि०सं० १९०० कार्तिक वदी १० तक कोठार का काम बावा विष्णुदासजी करते थे जो वि०सं० १८८० में अखाड़ वदी २ को स्वामी जी के शिश्य बने थे॥ ये वावा विष्णुदासजी हमारे स्वामी जी के ज्येष्ठ शिश्य प्रिय पाठकों के पूर्व परिचितहैं आप तुलसीराम नामक प्रेमी सेवक को भूले न होंगे। वस, ये ही तो बावा विष्णदासके रूप

में अब पलट गए थे। आप वि०सं० १८८२ में गोदावरी कुम्भ वि०सं० १८८६ – फिर १८८७ में दोवारी कशमीर अमरनाथ और वि०सं० १८८८–१९०० वाले हरिद्वार कुम्भ दोनों पर वि०सं० १९०८ प्रयाग अर्ध कुम्भी सभ यात्रा श्री स्वामीजी के साथ करीथी और ७५ वर्ष की आयु में जब आप वि०सं० १९१५ अखाड़ वदी २ – प्रातः ५ बजे देव लोक हुए तब तक श्री साधु तीर्थ में ही रहे॥

एक समय में वावा हरि नारायणदासजी को हरिद्वार में जाकर गङ्गाजी के दर्शन करने की इच्छा हुई तब श्री स्वामी वनखण्डी जी महाराज ने उनको श्री साधु बेला तीर्थ में ही हरिद्वार घाट पर श्री गङ्गाजी के दर्शन करा दिए॥

कई विरक्त महात्मा लोग श्री साधु वेला तीर्थ में स्वामीजी के सत्सङ्ग, भोजनादि की निश्चिन्तता और ईश्वर परायणताकी सुविधा देख चिरकाल तक यहां निवास करते रहे। इसी प्रकार संमारानल से संतप्त होकर कई ग्रहस्थी भी स्वामी जी से दीक्षा लेकर उनके आज्ञाकारी अनुचर बन कर अपना ऐहिक पार लौकिक साधन सिद्ध कर उदासीन सम्प्रदाय को सुशोभित करने लगे। उपरोक्ति बावा विश्णुदास और स्वामी हरिनारायण दासजी के अतिरिक्त उन में मुख्य शिश्य ये भी थे॥

३-बाबा ज्ञानदासजी— ये महात्मा चाचडा रियास्त के मिठनकोट नाम नगर में जन्मित हुए थे और १९०४ के पौष शुक्ला—२ चन्द्रात दिन को स्वामी जी के शिश्य हुए।

४-बावा सन्त शरण जी— इनका जन्म खानपुर रयास्त बहावलपुर के पास नवांकोट का था वि०सं० १९०५ के पौष-शुक्ला-२ चंद्र रात दिन को स्वामीजी के शिश्य हुए आपका जन्म नाम लोकूमल था॥

५-बावा ईश्वर दासजी— आपका जन्म कपूरथला रयास्त का था। वहां एक सरदार के आप सुपुत्र थे॥ वि०सं० १९०६ के माघकी संक्रान्ति पर स्वामीजी के शिश्य हुए॥ वि०सं० १९५४ पोष वदी १० रविवार संध्यारात्री को दो बजे आपने ८५ वर्ष की अवस्था में इस शरीररूपी पुराना चोला त्याग दिया। आपको सब लोग चाचाजी कर पुकारते थे॥

६-स्वामी हरिप्रसाद्जी— ये पूर्ण विद्वान् थे जिनको स्वप्न में भी प्रकृति तथा प्रकृति जन्य पदार्थों का लेश मात्र न था केवल मात्र ज्ञान स्वरूप ब्रह्म में आसक्त चित श्री स्वामी जी के परम पुनीत शिश्य थे। वि०सं० १९१० में तीर्थ में आए— वि०सं० १९१० के कार्तिक शुदी १ अन्न कूट के दिन स्वामीजी के शिश्य बनकर उदासीन सम्प्रदाय में प्रविष्टहुए॥ आप का जन्म हैद्राबाद सिन्धु के एक आमिल के ग्रह का था और जन्म नाम नारायण कहते थे॥ शेष चारित्र आगे वर्णन किया जायेगा जब स्वामीजी के पीछे गद्दी पर बैठेंगे। साधु बनके आप वि० सं० १९१२ की वैसाखी का मेला कर काशी विद्या अध्ययन करने गए।

७-बावा अमरदासजी- इनका जन्म देहली के पास का था वि०सं० १९१३ के माघ संक्रान्ति को स्वामीजी के शिश्य हुए॥

८-बावा हरिकृष्णजी- आपकाजन्म सारस्वत ब्राह्मण कुल में हुआ था और वि०सं० १९१३ के माघ की बसन्त पञ्चमी को स्वामी जी के शिश्य बने॥

९-बावासन्तोषदासजी- आपकाजन्म सिन्धु के लक्खी गाम का था। वि०सं० १९१४ के पोष-शुक्ला-२ चंद्र दिन को

(क) गुरु मंदिरके पश्चिम दिशाका चित्र।

स्वामी जी के शिष्य हुए और ६० वर्षकी आयू में वि०सं० १६३०
फालगुल सुदी १५ होली को श्री साधु बेला तीर्थमें स्वर्ग वासी
हुए ॥

१०-बावातुलसीदासजी- आपकाजन्म वैश्य जातिके
सिन्धु देश के टण्डे जाम नगर का था। वि०सं० १९१६ के मांघ
के सक्रान्त को स्वामीजी के शिष्य हुए। आप का देहावसान
७० वर्ष की आयू में वि०सं० १९६४ में ज्येष्ठ वदी ११ दिन प्रातः
२ बजे काशी धाम में मणि कर्णिका घाट पर हुआ था।

११-बावा रामदासजी- आपकाजन्म हरिपुरि हज़ारे से
दो कोस दूरी पर सरहां ग्राममें सारस्वत ब्राह्मणोंके कुलमें हुआ
था। वि०सं० १९१६ के मांघी संक्रान्त पर स्वामी जी के शिष्य
बने। शरीर पात ४२ वर्ष की आयू में शिकारपुर सिन्धु में
वि०सं० १९२२ अश्विनवदी ११ को हुआ था॥

१२-बावासन्तदासजी- इनका पूर्वनाम क्षैयालालथा जो
सारस्वत ब्राह्मण जन्म हुश्यारपुर जिला जलंधर पञ्जाब
लौंगोवाल में पले थे। वि०सं० १६१४ चैत्र शुदी में श्री साधुबेला
तीर्थमें आए किन्तु शिष्य वि०सं० १६१७ के आषाढ़ शुदी
पूर्णमासी को हुए ३५ वर्ष की आयू में वि०सं० १९३२
भाद्रों शुदी १४-दशम द्वारमें प्राण चढ़ाय कर सन्ध्या के ८
बजे आप ने शरीर-त्याग किया। ये थोरा समय गद्दी पर भी
बैठे थे जो हम आगे चल कर वर्णन करेंगे।

१३-बावा मोहनदासजी— आप का जन्म सिन्धु
हैद्राबाद वैश्यजाती का था। वि०सं० १६१८ के मांघ के संक्रान्त
को स्वामीजी के शिष्य हुए। कुछ काल स्वामी हरिनारायण

दास जी की अखत्यारी से वि०सं० १९२१ अश्वन शुदी २ चन्द्र रात्र संध्या ६ बजे गद्दी परि भी बैठे जो आप वि०सं० १९१६ आषाढ़ शुदी में यहां श्री साधु वेला तीर्थ में आये थे। वि०सं० १९२५ आश्विन वदी १४ को प्रातः काल ५ बजे ७५ वर्ष की अवस्था में देव लोक पधारे।

श्री स्वामी वनखण्डी जी महाराज की गुरु वंश परम्परा उदासीनों की इस प्रकारहै यथा-ः

१ ॐकार २ ईश्वर *(क) (इस ईश्वर सें तीन शाष विष्णु ब्रह्मा महेश की चली ईहां) ३ विष्णुं ४ ब्रह्मा ५ *(ख) सनकस नन्दन सनित कुमार सनातन चारों पुत्र शिश्य दोनों थे ६ नारद ७ कपिल ८ कपिलमाता (देवहूती) ९ दुर्वासा १० प्रासर ज्ञानी ११ जमदग्नि मुनि १२ प्रशुराम मुनि पुत्र शिश्य दोनों थे १३ कौशिकमुनि १४ चन्द्रमुनि १५ मतंगमुनि १६ चमनमुनि १७ त्रैलोचनमुनि १८ प्रभाकरमुनि १९ दाड़भमुनि २० प्रतापवानमुनि २१ सुखनमुनि २२ चन्द्रगुप्त मुनि २३ श्रुतिसिद्धमु-नि २४ माधोमुनि २५ आचर्ण सिद्ध मुनि २६ हरिनारायणमुनि २७ त्रैलोक्यराम मुनि २८ वरुचऋषि २९ कुण्डलमुनि ३० सुरथऋषि ३१ सुचेतमुनि ३२ उदेप्रकाशमुनि ३३ सुतेसिद्ध मुनि ३४ लक्ष्मीर दास ३५ सुमेर दास ३६ हरि गम्भीर मुनि ३७ रामऋषि ३८ चतुर्भुजमुनि ३९ भास ऋषि ४० रताराम ४१

---

* नोट- (क) प्रथम काषाय वस्त्र (गेरूआवस्त्र) धार ॐ सोहऽम् मन्त्र उपदेश देकर चर्णोद कदीया देखो उदासीनों का ॐसोऽहं मन्त्र निर्बाण उपनषद में

* नोट- (ख) चारोंमेसे सनकमुनि ने नारद को उपदेश कीया था

श्री १०८ मान् महाराज बाबा करणदासजी उदासीन

अतीत ऋषि ४२ वेदऋषि *(ग) ४३ गुरू सन्त रैणमुनि ४४ श्री गुरू नानक देवजी निर्वाण ४५ श्री गुरू श्रीचन्द्रजी ४६ श्रीगुरू गुरुदित्ताजी ४७ श्रीगुरू गोइंदजी ४८ श्रीगुरू कमलनयनजी ४६ श्रीगुरू गुरुमुखियाजी ५० श्रीगुरू चिन्तामणिजी ५१ श्रीगुरू नन्दलाल सोहिनांजी ५२ श्रीगुरू मीहांजी ५३ श्रीगुरू मलर्जा ५४ श्रीगुरू संतोखीजी ५५ श्रीगुरू संगतदासजी ५६ श्रीगुरू गुरुमुखदासजी ५७ श्रीगुरू गुरुदयालजी ५८ श्रीगुरू श्यामदास जी ५९ श्रीगुरू भगतरामजी ६० श्रीगुरूरतनदासजी ६१ श्री गुरू मेलारामजी ६२ श्रीगुरू वनखण्डीजी महाराज ६३ श्रीगुरू हरिनारायणदासजी ६४ श्रीगुरू स्वामी जयरामदासजी ६५ स्वामी हरिनामदासजी

वि०सं० १९१५ के चैत्र शुक्ला २ को एक महान् योग्य महात्मा बाबा कर्णदासजी भी यहां आकर रहने लगे जो वि०सं० १६२१ के आषाढ शुक्ला ४ को शिकारपुर गए॥ श्री स्वामी हरि प्रसादजी के साथ वि०सं० १९२१ अश्वन शुदी ११ के दिन साथ में रहने लगे फिर साथ में ही श्री साधु बेला तीर्थ में आये वि०सं० १६३२ भाद्रों शुदी १५ प्रातः ९ बजे को कोठार की गादी परि स्वामी हरि प्रसादजीनें बैठाया बाबा कर्णदास जी की आयू पूर्ण ८५ वर्षकी थी वि०सं० १९५२ फाल्गुन वदी ४ शनि, प्रातः २ बजे देवलोक पधारे ॥

श्री स्वामी वनखण्डीजी का नित्य नियम इस प्रकारथा। प्रातः काल ३ बजे बाबा हरिनारायण दास जी उनको जगाता था और प्रातः स्मरण करके शौच क्रिया से निवृत हो कर स्नान करते थे और संध्या वन्दन कर सूर्य को अर्घ्य देकर उसको

---

* नोट- (ग) एह पहिले वर्ण के ब्राहमण थे पिछे मुनि होने करभी पहिला ऋषि शब्द का प्रयोग चलाआया ऐसा उक्तसभी जगा जानलेनां मुनि नाम साधू काहै

प्रणाम और परिक्रमा करते थे। तत्पश्चात् गुरु मन्दिर में ग्रन्थ साहिब का पाठ करके श्री साधुबेला तीर्थ की परिक्रमा करते थे । फिर १० बजे गद्दी पर आकर विराजमान होते थे और प्रेमियों को दर्शन देकर उन से वार्तालाप कर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। पीछे श्री मद्भागवतकी कथा कर १२ बजे साधु महात्माओं और अतिथियों को जो भी तीर्थ पर उपस्थित होवे उसको भोजन कराते और आप भी करते थे। पुनः थोरी देर विश्राम कर फिर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे और शाम को योग वसिष्ठ की और रात्री को पारस भाग की कथा करते थे। प्रतिपदा, अष्टमी, चतुर्दशी, उमावस्या और पूर्णमासी को रामायण की कथा भी करते थे क्यों कि विद्यार्थियों की संथा इन दिनों पर बन्द रहतीहै। इस प्रकार सारा समय ईश्वर परायण ही रहते थे और आज तक सब गद्दी धर भी अपना नियम इस प्रकार रखते आतेहैं।

षष्ठ सर्ग

देहावसान

अब स्वामी जी को एक सौ वर्ष पूरे होने पर थे; अपने शरीर को अधिक समय के लिए संसार यात्रा कराना वे पसन्द नहीं करते थे अतः वे अपना जीवन खेल समेटने के अभिप्राय से सभा मण्डल में बैठे हुए हरिनारायणदास प्रभृति शिष्य वर्ग तथा कई ग्रहस्थियों के प्रति अपना आशय प्रकटकर कहने लगे कि अब शरीर को सौ वर्ष से अधिक रक्खना हम उचित नहीं जानते हैं और अपने पीछे इस तीर्थ स्थान को सुरक्षित तथा सुप्रतिष्ठित रक्खने के लिए अपने सिंहासन (गद्दी) का युवराज हम हरिनारायणदासजी को ठहरातेहैं। ऐसे वचन सुन कर सभा मण्डलमें सन्नाटा छा गया किसी को कुछ बोलने का साहस नहीं हुआ किन्तु स्वामी हरिनारायण दास जी से रहा न गया वे खड़े होकर हाथ बांध कर कहने लगे कि हे परम माननीय गुरूजी! मैं तो सदैव आप की सेवा में ही प्रसन्न रहता हूं अत एव आपके पीछे भी मैं सेवा धारी बन कर ही

रहना चाहताहूं और गद्दीका अधिकार मेरेबदलेमें मेरे सुयोग्य गुरु—भाई हरिप्रसादजी को देवें। और जब तक वे काशी से आवें तब तक कृपया अपने शरीर को रक्खें हम अभी ही हरि प्रसाद जी को तार द्वारा सूचना देते हैं। स्वामी जी कहने लगे कि हमने तेरे को ही युवराज बना दियाहै आगे फिर तेरी इच्छा है जिसी को भी गद्दी का अधिकार सौंप दो। हरिनारायणदास जी कहने लगे कि मेरी इच्छा सर्वथा हरिप्रसादजी को गद्दी देने की है आप कृपा करके उसके आने तक अपने शरीर को स्थित रक्खें। स्वामी जी ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार की और उसी समय वि०सं० १६२० के ज्येष्ठ शुक्ला—२ चंदरात्र दिन प्रातः ८ बजे को हरिनारायण दास जी को युवराज पदवी देकर अपना भगवां सिरोपा (अञ्चला) भगवां चोला उसके गले में डाला और गद्दी का तिलक भभूती का अपने हाथों से दिया। हरि प्रसादजी जो अपने गुरूजी की आज्ञा से काशी विद्या पढ़ने गए थे उनको शीघ्र आने के लिए तार भेजी गई। उन दिनों में अर्थात् वि०सं० १६२० तक तार कराची तक लग गई थी और रेल गाड़ी मुलतान तक ही आ सकती थी आगे को रस्ता बनता जाता था। इसी लिए हमारे भावी अधिष्ठाता स्वामी हरिप्रसाद जी को यहां पहुंचने में पन्द्रह दिन लगे। आते ही स्वामी जी को दण्डवत्त् प्रणाम कर सबसे यथोचित रीति से मिले॥

तत्पश्चात् श्री स्वामी वनखण्डी जी सबको बुला के कहने लगे कि आज रात्रि को ३ बजे हमको शरीर यात्रा समाप्त करनी है अच्छा मुहूर्त्त सूर्य भी उत्तरायण मेंहै। तुम लोग सावधान रहें, हमारी कोई समाधि बनानी नहीं किन्तु इस जर्जरी भूत शरीर का सिन्धु सप्तनद के परम पावन जल में प्रवाह करना। हम अपनी समाधि में सामान्य रूप से अभी से लगे हुएहैं और ३ बजे रात्रि को दशवें द्वार में प्राण रन्ध्र करके अन्तिम श्वास

अतीत ऋषि ४२ वेदऋषि *(ग) ४३ गुरू सन्त रैणमुनि ४४ श्री गुरू नानक देवजी निर्वाण ४५ श्री गुरू श्रीचन्द्रजी ४६ श्रीगुरू गुरुदित्ताजी ४७ श्रीगुरू गोइंदजी ४८ श्रीगुरू कमलनयनजी ४९ श्रीगुरू गुरुमुखियाजी ५० श्रीगुरू चिन्तामणिजी ५१ श्रीगुरू नन्दलाल सोहिनांजी ५२ श्रीगुरू मीहांजी ५३ श्रीगुरू मलजी ५४ श्रीगुरू संतोखीजी ५५ श्रीगुरू संगतदासजी ५६ श्रीगुरू गुरुमुखदासजी ५७ श्रीगुरू गुरुदयालजी ५८ श्रीगुरू श्यामदास जी ५९ श्रीगुरू भगतरामजी ६० श्रीगुरूरतनदासजी ६१ श्री गुरू मेलारामजी ६२ श्रीगुरू वनखण्डीजी महाराज ६३ श्रीगुरू हरिनारायणदासजी ६४ श्रीगुरू स्वामी जयरामदासजी ६५ स्वामी हरिनामदासजी

वि०सं० १९१५ के चैत्र शुक्ला २ को एक महान् योग्य महात्मा बाबा कर्णदासजी भी यहां आकर रहने लगे जो वि०सं० १९२१ के आषाढ शुक्ला ४ को शिकारपुर गए॥ श्री स्वामी हरि प्रसादजी के साथ वि०सं० १९२१ अश्वन शुदी ११ के दिन साथ में रहने लगे फिर साथ में ही श्री साधु बेला तीर्थ में आये वि०सं० १९३२ भाद्रों शुदी १५ प्रातः ९ बजे को कोठार की गादी परि स्वामी हरि प्रसादजीने बैठाया बाबा कर्णदास जी की आयू पूर्ण ८५ वर्षकी थी वि०सं० १९५२ फाल्गुन वदी ४ शनि, प्रातः २ बजे देवलोक पधारे ॥

श्री स्वामी वनखण्डीजी का नित्य नियम इस प्रकारथा। प्रातः काल ३ बजे बाबा हरिनारायण दास जी उनको जगाता था और प्रातः स्मरण करके शौच क्रिया से निवृत हो कर स्नान करते थे और संध्या वन्दन कर सूर्य को अर्घ्य देकर उसको

---

* नोट- (ग) एह पहिले वर्ण के ब्राहमण थे पिछे मुनि होने करभी पहिला ऋषि शब्द का प्रयोग चलाआया ऐसा उक्तसभी जगा जानलेनां मुनि नाम साधू काहै

प्रणाम और परिक्रमा करते थे। तत्पश्चात् गुरु मन्दिर में ग्रन्थ साहिब का पाठ करके श्री साधुबेला तीर्थ की परिक्रमा करते थे । फिर १० बजे गद्दी पर आकर विराजमान होते थे और प्रेमियों को दर्शन देकर उन से वार्तालाप कर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। पीछे श्री मद्भागवतकी कथा कर १२ बजे साधु महात्माओं और अतिथियों को जो भी तीर्थ पर उपस्थित होवे उसको भोजन कराते और आप भी करते थे। पुनः थोरी देर विश्राम कर फिर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे और शाम को योग वसिष्ठ की और रात्री को पारस भाग की कथा करते थे। प्रतिपदा, अष्टमी, चतुर्दशी, उमावस्या और पूर्णमासी को रामायण की कथा भी करते थे क्यों कि विद्यार्थियों की संथा इन दिनों पर बन्द रहतीहै। इस प्रकार सारा समय ईश्वर परायण ही रहते थे और आज तक सब गद्दी धर भी अपना नियम इस प्रकार रक्खते आतेहैं।

षष्ठ सर्ग

देहावसान

अब स्वामी जी को एक सौ वर्ष पूरे होने पर थे; अपने शरीर को अधिक समय के लिए संसार यात्रा कराना वे पसन्द नहीं करते थे अतः वे अपना जीवन खेल समेटने के अभिप्राय से सभा मण्डल में बैठे हुए हरिनारायणदास प्रभृति शिष्य वर्ग तथा कई ग्रहस्थियों के प्रति अपना आशय प्रकटकर कहने लगे कि अब शरीर को सौ वर्ष से अधिक रक्खना हम उचित नहीं जानते हैं और अपने पीछे इस तीर्थ स्थान को सुरक्षित तथा सुप्रतिष्ठित रक्खने के लिए अपने सिंहासन (गद्दी) का युवराज हम हरिनारायणदासजी को ठहराते हैं। ऐसे वचन सुन कर सभा मण्डलमें सन्नाटा छा गया किसी को कुछ बोलने का साहस नहीं हुआ किन्तु स्वामी हरिनारायण दास जी से रहा न गया वे खड़े होकर हाथ बांध कर कहने लगे कि हे परम माननीय गुरूजी! मैं तो सदैव आप की सेवा में ही प्रसन्न रहता हूं अत एव आपके पीछे भी मैं सेवा धारी बन कर ही

रहना चाहताहूं और गद्दीका अधिकार मेरेबदलेमें मेरे सुयोग्य गुरु—भाई हरिप्रसादजी को देवें। और जब तक वे काशी से आवें तब तक कृपया अपने शरीर को रक्खें हम अभी ही हरि प्रसाद जी को तार द्वारा सूचना देते हैं। स्वामी जी कहने लगे कि हमने तेरे को ही युवराज बना दियाहै आगे फिर तेरी इच्छा है जिसी को भी गद्दी का अधिकार सौंप दो। हरिनारायणदास जी कहने लगे कि मेरी इच्छा सर्वथा हरिप्रसादजी को गद्दी देने की है आप कृपा करके उसके आने तक अपने शरीर को स्थिर रक्खें। स्वामी जी ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार की और उसी समय वि०सं० १९२० के ज्येष्ठ शुक्ला—२ चंदरात्र दिन प्रातः ८ बजे को हरिनारायण दास जी को युवराज पदवी देकर अपना भगवां सिरोपा (अञ्चला) भगवां चोला उसके गले में डाला और गद्दी का तिलक भभूती का अपने हाथों से दिया। हरि प्रसादजी जो अपने गुरूजी की आज्ञा से काशी विद्या पढ़ने गए थे उनको शीघ्र आने के लिए तार भेजी गई। उन दिनों में अर्थात् वि०सं० १९२० तक तार कराची तक लग गई थी और रेल गाड़ी मुलतान तक ही आ सकती थी आगे को रस्ता बनता जाता था। इसी लिए हमारे भावी अधिष्ठाता स्वामी हरिप्रसाद जी को यहां पहुंचने में पन्द्रह दिन लगे। आते ही स्वामी जी को दण्डवत् प्रणाम कर सबसे यथोचित रीति से मिले॥

तत्पश्चात् श्री स्वामी वनखण्डी जी सबको बुला के कहने लगे कि आज रात्रि को ३ बजे हमको शरीर यात्रा समाप्त करनी है अच्छा मुहूर्त्त सूर्य भी उत्तरायण में है। तुम लोग सावधान रहें, हमारी कोई समाधि बनानी नहीं किन्तु इस जर्जरी भूत शरीर का सिन्धु सप्तनद के परम पावन जल में प्रवाह करना। हम अपनी समाधि में सामान्य रूप से अभी से लगे हुएहैं और २ बजे रात्रि को दशवें द्वार में प्राण रन्ध्र करके अन्तिम श्वास

ले लेंगे। शरीर छूटने की यह परीक्षा भी तुम लोग कर सकते हो जो माक्खन मंगा कर मेरे मस्तक पर रक्खना यदि वह कभी भी नहीं पिघले तो जान लेना कि हम शरीर से अलग हो गए।

रात्रि का भोजन करके सब शिश्य, सेवक सावधानी से स्वामी जी के आगे बैठ गए। आधी रात भी बीत चली, दो बजे और स्वामी जी ने पूरक प्राणायाम किया, घण्टा भर प्राण कुम्भक रूप में रहा जहां से फिर रेचक रूप में कभी नहीं आया। माक्खन रक्ख कर यथादिष्ट परीक्षा भी की गई किन्तु वह पिघला नहीं; इससे सब लोग जान गए कि हमारे योगाचार्य्य गुरू जी आत्मानन्द में सदैव के लिए लीन हो गए। वह बुधवार था और वि०सं० १९२० के आषाढ़ मासके कृष्णपक्ष में द्वितीया का प्रवेश था। सबेरा होते ही स्वामी जी के शरीर—त्याग की वार्ता आस पास फैल गई और सक्खर, भक्खर रोहड़ी आदिक समीप वर्ती नगरों से कई लोग आकर जुटे तथा बड़ी सज धज और समारोह से स्वामी जी की जल-प्रवाह क्रिया की गई। *

स्वामी हरिनारायण दास जी ने शुभ मुहूर्त्त देख कर प्रातः उसी ही दिन ११॥ बजे स्वामी हरिप्रसादजी को राज तिलक देकर गद्दी पर बिठाया।

श्री स्वामी वनखण्डीजी के देहावसान के पीछे भी एक अलौकिक घटना हुई। एक शिकारपुरी सेठ बम्बई से एक मोतियों की माला स्वामी जी को भेट्ट करने को ले आया। जब उसने सक्खर में आकर स्वामी जी के शरीर पात की वार्ता सुनी तब वह अत्यन्त ही खिन्न-चित्त हो गया। उसकी स्वामी

---

* नोट- गुरू बनखण्डी महाराज जी के चलाने की शोक चिट्ठी आई की सबूती भी मेरे पास मौजूद हैं इसकर उक्त लिख्या वि०सं० १९२० अखाड़ वदी २ बुधवार ठीक है

जी में बड़ी ही श्रद्धा थी और उसको यह भी निश्चय था कि स्वामी जी सर्व शक्तिमान पूर्ण योगीश्वर थे अतः वह श्री सिन्धु गङ्गा के कूल पर मनमें यह ठान के बैठ गया कि जब तक स्वामी वनखण्डी जी यहां आकर अपनी माला नहीं लेवेंगे तब तक मैं यहां से न उठूंगा और न अन्न जल ही ग्रहण करूंगा। उस परम श्रद्धालु सेठ को वहां बैठे दो दिन बीत गए। रात को स्वामी जी उसको स्वप्न में मिले और कहने लगे कि " मैं तेरा अचल विश्वास और प्रेम देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। कल मेरा शरीर यहां तेरे समीप नदी में देखने में आएगा तब तू यह माला अर्पण करके अपनी मन कामना पूर्ण करना। तीसरे दिन वैसे ही हुआ जैसे गत रात्रि को स्वामी जी स्वप्न में कह गए थे। स्वामी जी का मृत शरीर सिन्धु गङ्गा के अगाध जल से प्रकट हो गया और उस (सेठ घुरिया मल मोदीनाम था) ने माला पहना के अपना मनोऽभिलषित पूरा किया॥ यह वार्ता चारों ओर फैल गई और कई नर और नारियां यह विचित्र चरित्र देखने को आ सम्मिलत हुए। श्री साधुवेला तीर्थ के सब साधु महात्मा वहां आकर प्राप्त हो गए थे वे उसी शरीर को साधुवेला तीर्थ पर ले गए और बड़े उत्साह और समारोह से पुनः स्वाजीजी के शरीर को श्री सिन्धु गङ्गा के कल्लोक लोल तरङ्गों में समाधित कीया।

अब स्वामी जी हमारे पास नहींहैं तथापि उन का प्रातः स्मरणीय नाम कभी जाने वाला नहीं। हमारे पूर्वज योगियों के सम्बन्ध में कई अलौकिक कार्य करने की कौशलता अनेक शास्त्रों में प्रसिद्धहै अतः श्री स्वामी वनखण्डी जी के सम्बन्ध में भी ऊपरि वर्णित असाधारण कार्यों में कोई संदेह नहीं आ सकता॥ इसमें भी कोई संशय होना ही न चाहिए कि श्री स्वामी वन खण्डी जी ऋद्धि-सिद्धि सम्पादित पूर्ण योगीश्वर थे अतः उन

के लिए ऐसे कार्य कर देना कोई बड़ी बात नहीं थी।

श्री स्वामी बनखण्डी जी के जीवन से योग शास्त्र की सत्य ता के बिना कई अन्य शिक्षाएं भी मिलतीहैं जो यहां संक्षेप से भी वर्णन की जाय तो भी पुस्तक बहुत बढ़ जाएगा। अतः हम पाठकों को यों कह कर ही सन्तुष्ट करतेहैं कि वे विदेह मुक्त होते हुए भी परम दयालु परोपकारी तीर्थों और सब देव देवीयों को मानने वाले हिन्दू सनातनी सच्चे साधु थे। जिस का हाल कुच्छ विस्तार से गुरू बनखण्डी भजनावली गुरुमुखी वाले में छपिआ हुआ पड़ सकतेहैं ॥

इति श्री मत्सिन्ध्वादिसप्तनद मध्य वर्त्ति श्रीसाधु बेला तीर्थाऽधिष्ठातृयोगिराजपूज्यपाद श्री १०८ मत्स्वामि बनखण्डि सिंहासीनश्रीमदुदासीन वर्य्य परम हंसपरिव्राज काचार्य्य श्री १०८ मत्स्वामि हरिनामदासाज्ञया कार्ष्णि नारायणदासेन विनिर्म्मितं श्रीगुरुबनखण्डिचरितं समाप्तम् ॥

हरिः ॐ तत्सत्

श्री गुरूबनखण्डी विजयतेतराम्

सप्तम सर्ग

२. श्री स्वामी हरिप्रसादजी

(वि० १९२० आषाढ़ कृष्णा २ प्रात: ११।। बजे बुधवार से १९२१ अश्विन शुक्ला २ (दूज) चन्द्ररात संध्या ८ बजे तक प्रथम वार गद्दी परिरहे)

श्री स्वामी वनखण्डी जी के अनन्तर श्री स्वामी हरिनारायण दास जी ने अपने अधिकार से श्री स्वामी हरिप्रसाद जी को गद्दी पर बिठा के तिलक दीया और भगवा सिरोपा और चोला उनको पहनाया। कोठार की गद्दी पर श्री स्वामी हरिनारायण दास जी स्वयम् विराजमान थे। श्री स्वामी हरिप्रसादजी मत भेद होने से शीघ्र ही साधुबेला तीर्थ छोड़ कर चले गए। एक वर्ष साढ़े तीन महीने और साढ़े १४ घण्टे गद्दी पर बैठे॥ और शिकारपुर में जाकर बाबा कर्णदासजी को भी कुठारी बना कर साथ में कर लिया और साधु चेतन प्रकाश आदि भी साथ में थे फिर सिन्धु के कई गामोंमें सदुपदेश देते अटन करते रहे॥ वि०सं० १९२४ के हरिद्वार कुम्भ पर पधारे साथ में कई साधु

ले लेंगे। शरीर छूटने की यह परीक्षा भी तुम लोग कर सकते हो जो माक्खन मंगा कर मेरे मस्तक पर रक्खना यदि वह कभी भी नहीं पिघले तो जान लेना कि हम शरीर से अलग हो गए।

रात्रि का भोजन करके सब शिश्य, सेवक सावधानी से स्वामी जी के आगे बैठ गए। आधी रात भी बीत चली, दो बजे और स्वामी जी ने पूरक प्राणायाम किया, घण्टा भर प्राण कुम्भक रूप में रहा जहां से फिर रेचक रूप में कभी नहीं आया। माक्खन रक्ख कर यथादिष्ट परीक्षा भी की गई किन्तु वह पिघला नहीं; इससे सब लोग जान गए कि हमारे योगाचार्य्य गुरू जी आत्मानन्द में सदैव के लिए लीन हो गए। वह बुधवार था और वि०सं० १९२० के आषाढ़ मासके कृष्णपक्ष में द्वितीया का प्रवेश था। सवेरा होते ही स्वामी जी के शरीर—त्याग की वार्ता आस पास फैल गई और सक्खर, भक्खर रोहड़ी आदिक समीप वर्ती नगरों से कई लोग आकर जुटे तथा बड़ी सज धज और समारोह से स्वामी जी की जल-प्रवाह क्रिया की गई। *

स्वामी हरिनारायण दास जी ने शुभ मुहूर्त्त देख कर प्रातः उसी ही दिन ११॥ बजे स्वामी हरिप्रसादजी को राज तिलक देकर गद्दी पर बिठाया।

श्री स्वामी वनखण्डीजी के देहावसान के पीछे भी एक अलौकिक घटना हुई। एक शिकारपुरी सेठ बम्बई से एक मोतियों की माला स्वामी जी को भेट्ट करने को ले आया। जब उसने सक्खर में आकर स्वामी जी के शरीर पात की वार्ता सुनी तब वह अत्यन्त ही खिन्न-चित्त हो गया। उसकी स्वामी

* नोट- गुरू बनखण्डी महाराज जी के चलाने की शोक चिट्ठी आई की सबूती भी मेरे पास मौजूद हैं इसकर उक्त लिख्या वि०सं० १९२० अखाड़ वदी २ बुधवार ठीक है

जी में बड़ी ही श्रद्धा थी और उसको यह भी निश्चय था कि स्वामी जी सर्व शक्तिमान पूर्ण योगीश्वर थे अतः वह श्री सिन्धु गङ्गा के कूल पर मनमें यह ठान के बैठ गया कि जब तक स्वामी वनखण्डी जी यहां आकर अपनी माला नहीं लेवेंगे तब तक मैं यहां से न उठूंगा और न अन्न जल ही ग्रहण करूंगा। उस परम श्रद्धालु सेठ को वहां बैठे दो दिन बीत गए। रात को स्वामी जी उसको स्वप्न में मिले और कहने लगे कि " मैं तेरा अचल विश्वास और प्रेम देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। कल मेरा शरीर यहां तेरे समीप नदी में देखने में आएगा तब तू यह माला अर्पण करके अपनी मन कामना पूर्ण करना। तीसरे दिन वैसे ही हुआ जैसे गत रात्रि को स्वामी जी स्वप्न में कह गए थे। स्वामी जी का मृत शरीर सिन्धु गङ्गा के अगाध जल से प्रकट हो गया और उस (सेठ घुरिया मल मोदीनाम था) ने माला पहनाके अपना मनोऽभिलाषित पूरा किया॥ यह वार्ता चारों ओर फैल गई और कई नर और नारियां यह विचित्र चरित्र देखने को आ सम्मिलत हुए। श्री साधुबेला तीर्थ के सब साधु महात्मा वहां आकर प्राप्त हो गए थे वे उसी शरीर को साधुबेला तीर्थ पर ले गए और बड़े उत्साह और समारोह से पुनः स्वाजीजी के शरीर को श्री सिन्धु गङ्गा के कल्लोक लोल तरङ्गों में समाधित कीया।

अब स्वामी जी हमारे पास नहींहैं तथापि उन का प्रातः स्मरणीय नाम कभी जाने वाला नहीं। हमारे पूर्वज योगियों के सम्बन्ध में कई अलौकिक कार्य करने की कौशलता अनेक शास्त्रों में प्रसिद्धहै अतः श्री स्वामी वनखण्डी जी के सम्बन्ध में भी ऊपरि वर्णित असाधारण कार्यों में कोई संदेह नहीं आ सकता॥ इसमें भी कोई संशय होना ही न चाहिए कि श्री स्वामी वन खण्डी जी ऋद्धि-सिद्धि सम्पादित पूर्ण योगीश्वर थे अतः उन

के लिए ऐसे कार्य कर देना कोई बड़ी बात नहीं थी।

श्री स्वामी वनखण्डी जी के जीवन से योग शास्त्र की सत्य ता के विना कई अन्य शिक्षाएं भी मिलतीहैं जो यहां संक्षेप से भी वर्णन की जाय तो भी पुस्तक बहुत बढ़ जाएगा। अतः हम पाठकों को यों कह कर ही सन्तुष्ट करतेहैं कि वे विदेह मुक्त होते हुए भी परम दयालु परोपकारी तीर्थों और सब देव देवीयों को मानने वाले हिन्दू सनातनी सच्चे साधु थे। जिस का हाल कुच्छ विस्तार सें गुरू बनखण्डी भजनावली गुरुमुखी वाले में छपिआ हुआ पड़ सकतेहैं॥

इति श्री मत्सिन्ध्वादिसप्तनद मध्य वर्त्ति श्रीसाधु बेला तीर्थाऽधिष्ठातृयोगिराजपूज्यपाद श्री १०६ मत्स्वामि बनखण्डि सिंहासीनश्रीमदुदासीन वर्य्य परम हंसपरिव्राज काचार्य्य श्री १०८ मत्स्वामि हरिनामदासाज्ञया कार्ष्णि नारायणदासेन विनिर्म्मितं श्रीगुरूबनखण्डिचरितं समाप्तम्॥

हरिः ॐ तत्सत्

श्री गुरूबनखण्डी विजयतेतराम्
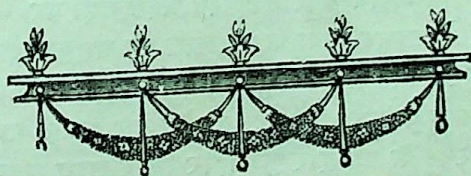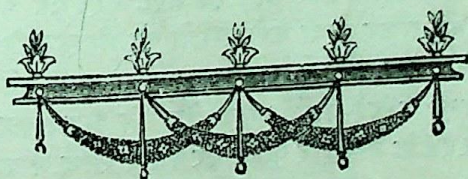
सप्तम सर्ग

२. श्री स्वामी हरिप्रसादजी

(वि० १६२० आषाढ़ कृष्णा २ प्रात: ११॥ बजे बुधवार से १६२१ अश्विन शुक्ला २ (दूज) चन्द्ररात संध्या ८ बजे तक प्रथम वार गद्दी परिरहे)

श्री स्वामी वनखण्डी जी के अनन्तर श्री स्वामी हरिनारायण दास जी ने अपने अधिकार से श्री स्वामी हरिप्रसाद जी को गद्दी पर बिठा के तिलक दीया और भगवा सिरोपा और चोला उनको पहनाया। कोठार की गद्दी पर श्री स्वामी हरिनारायण दास जी स्वयम् विराजमान थे। श्री स्वामी हरिप्रसादजी मत भेद होने से शीघ्र ही साधुबेला तीर्थ छोड़ कर चले गए। एक वर्ष साढ़े तीन महीने और साढ़े १४ घण्टे गद्दी पर बैठे॥ और शिकारपुर में जाकर बाबा कर्णदासजी को भी कुठारी बना कर साथ में कर लिया और साधु चेतन प्रकाश आदि भी साथ में थे फिर सिन्धु के कई गामोंमें सदुपदेश देते अटन करते रहे॥ वि०सं० १६२५ के हरिद्वार कुम्भ पर पधारे साथ में कई साधु

श्री १०८ स्वामी हरिप्रसादजी महाराज उदासीन

और उसी समय के प्रसिद्ध भक्त पहलू मल और मूंजराम भी साथ में गए॥ कभी २ भक्त रुघूराम भी साथ में रहता था और कुम्भ करके फिर भारत वर्ष के अन्य तीर्थ स्थानों पर गए और वहां से फिर छेः साल के पीछे लौटे। इसके बीच में

३. श्री स्वामी मोहनदासजी उदासीन।

(वि०सं० १९२१ अश्विन शुक्ला २ चन्द्ररात्र संध्या ६ बजे से १९२५ अश्विन कृष्ण १४ प्रातः ५ बजे तक गद्दी पररिहे)

को स्वामी हरिनारायण दास जी ने गद्दी पर बिठाया। आप श्री स्वामी वनखण्डी उदासीनजी के १३ नम्बर के शिष्य (चेला) थे। वि०सं० १९१८ के माघ सन्क्रान्ति को आप ने उदासीन सम्प्रदाय में प्रवेष किया। आप बहुत वृद्ध हो गए थे अतः थोरे समय के पीछे ही चार साल गद्दी पर बैठकर वि०सं० १९२५ अश्विन कृष्णा १४ को प्रातः काल ५ बजे ७५ वर्ष की अवस्था में आपने देव लोक को प्रयाण किया॥ इन्होंने अपना चेला कोई नहीं बनाय। ॥

४. श्री स्वामी सन्त दासजी उदासीन।

(वि०सं० १९२५ अश्विन-कृ-१४ प्रातः ८ बजे से १९२९-अश्विन-कृ-४ संध्या ६॥ बजे तक गद्दी पररिहे)

श्री स्वामी मोहनदासजी के पीछे स्वामी हरिनारायण दास जी ने श्री स्वामी सन्त दास उदासीन जी को गद्दी पर बिठाया। आप श्री १०८ गुरू उदासीन बनखण्डी जी के १२ नम्बर के शिष्य (चेला) थे वि०सं० १९१७ में श्री स्वामी जी के चेला बन कर आपने उदासी सम्प्रदाय को सुशोभित किया इन्होंने भी अपना कोई चेला नहीं बनाया॥

श्री गुरू उदासीन हरिनारायण दासजी।

इनके दीक्षाग्रहीत शिश्य (चेले) दश थे जिनका संक्षिप्त ब्योरा इस प्रकारहै :—

नं	शुभ नाम	गुरू उदासीन सम्प्रदाय में आनेकी मिति	पूर्ण आयु	देवलोक पधार ने की मिति
१	बावामङ्गलदासजी	१६०७ चैत्र. सु. १	७५	१९४८ ज्येष्ठ सु ११ ६ बजे दिन के
२	बावा ज्ञानदासजी	१९०७ पोष सु. २ चन्द्र रात्र दिन	६५	
३	बावा प्रेमदासजी	१९२१ दीपमाला	६५	
४	बावा मेहरदासजी	१६२३माघसंक्रान्त	५०	१६४० चैत्र. सु २
५	बावा मानदासजी	१६२४माघसंक्रान्त	६०	१६४६चैत्र.सु.११ संध्या ८ बजे।
६	स्वा० जयरामदास जी	१९२५आश्विनशु० १०, ११ बजे दिनके	६०	१६५० प्रथम आषाढ. वदी८ बुध० संध्यादिनके४बजे।
७	बावा हरिदास जी	१६२६ दीप माला	६५	१९६६ अलहयार टंडा
८	बावा हरदास जी	१६२७ अन्नकूट	७५	१९७०
६	बावा पूर्णदास जी	१६२७ चैत्र व. १५	४२	१६७२
१०	बावा साधूरामजी	१९२८अखाड़ शु० १५	४५	१६३०
११	बावाहरिनामदास जी नांगा	१६२८(शरदपूर्णमा) अश्वन शुदी १५	५०	१९५७
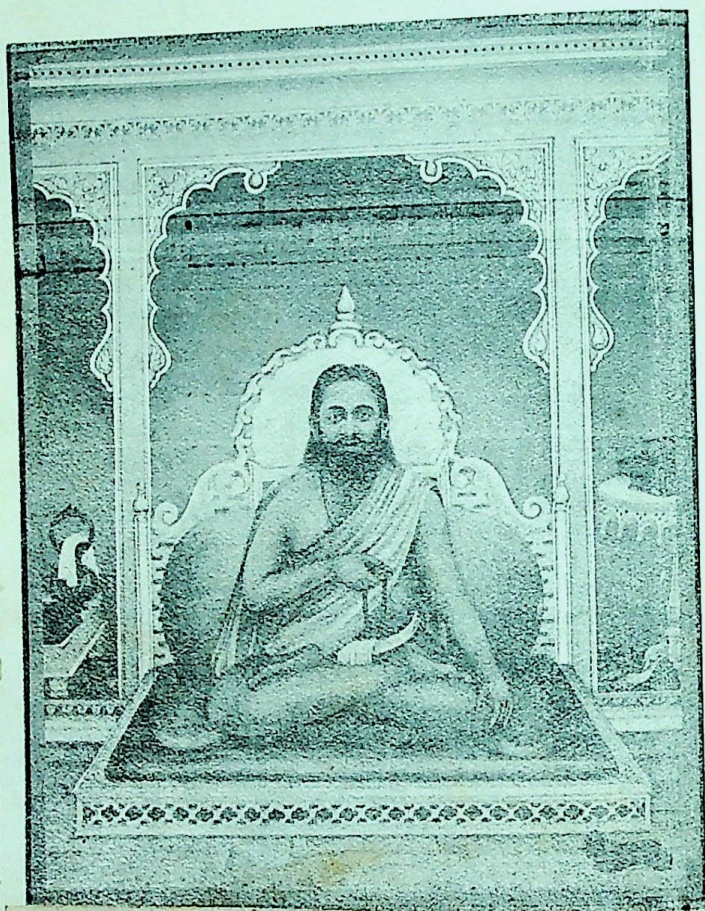
श्री १०८ निर्बाण स्वामी हरिनारायणदासजी उदासीन।

अब श्री गुरू उदासीन हरिनारायण दास जी की आयू ८० वर्ष की हो ली थी अतः वे वैकुण्ठ धाम पधारने वालेथे इस लिए उन्होंने श्री स्वामी सन्त दास के पीछे वड़ी गद्दी पर बैठने के लिए युवराज पद वि०सं० १९२९ भाद्र वदी ५ प्रातः ८ बजे अपने षष्ट शिश्य (चेला) स्वामी जयरामदासजी को दिया और आप वि०सं० १९२६ के भाद्र वदी ७ (सप्तमी) को ८० वर्ष की आयू में दिन के २ बजे वैकुण्ठ लोक सिधारे सिंधु सरस्वती गंगा में जल समाधी किया॥ इनके पश्चात् उसी दिन ६॥ बजे कोठार की गद्दी पर स्वामी जयराम दास जी बैठे॥

श्री स्वामी जयराम दास जी वड़ेही नीतिज्ञ और बुद्धिमान थे उन्हों ने स्वामी सन्त दासजी की अनुमति से स्वामी हरिप्रसाद जी को लाके गद्दीपर विठाया जो कि तीर्थयात्रा से होकर वि०सं० १९२८ के श्रावण सुदी १५ को तुलसी दास के वगीचे में आकर रहने लगे थे॥ और स्वामी सन्त दास जी वि०सं० १९२९ अश्विन वदी ४ को संध्या ६॥ बजे वड़ी गद्दी छोड़ कोठार की गद्दी पर बैठे और साथ में श्री स्वामी जयराम दास जी भी रहे॥

५- श्री स्वामी हरिप्रसादजी उदासीन।

(वि०सं० १९२६ अश्विन कृष्णा ४ संध्या ६॥ बजे से वि०सं० १९४० मार्ग शीर्ष कृष्णा९ दिन के दो बजे तक गद्दी परिरहे)

द्वितीयवार

इससमय तक श्री साधु वेला तीर्थ में कच्ची कुटियाएं ही वनी हुईथीं। किन्तु अब दृश्यने पलटाखाया, कईकाम इन महात्माओं के राज्य में होने पाए जो हमआगे चलकर वर्णन करते हैं। पहले इनकी की हुई तीर्थ यात्रा से परिचित हो लें

वि०सं० १९२४ में हरिद्वार कुम्भ वि०सं० १९३६ में हरिद्वार कुम्भ बद्री नारायण आदिकी यात्राकी, वि०सं० १९२६ और वि०सं० १९३८ में प्रयाग राज का कुम्भ और अन्य तीर्थों की यानें रामेश्वर द्वार का दो धाम की यात्रा पर गए वहां स्वामी जी का वड़ा सन्मान और सज धज रही जहां कहीं जाते साधुओं को और अतिथियों को भोजन, विद्यार्थियों को पुस्तक और पण्डितों को सन्मान तथा भेट्ट पूजा देकर प्रसन्न रक्खते थे ॥ कई वार पण्डितों की सभाएं की और उनके शास्त्रार्थ कराए। कई विद्वान उनके स्तुति के संस्कृत में श्लोक बना कर लाते रहे जिनमें से खादि खण्डन के टिप्पणी कर्ता पं० मोहनलालजी का चतुष्टक नमूने तौर यहां भी देते हैं ॥ *

येषांदिक्षसमन्ततोहिविमलंव्याप्तं यशो निर्मलम् ।
कीर्तिश्चाप्यनुकीर्तयन्तिकवयःसर्वत्रयेषांशुभाम् ॥
शान्ताःस्वात्मरताविवेकजलधौस्नाताश्च ये सर्वदा ।
धन्याःस्वामिहरिप्रसादमुनयस्तेऽस्यांक्षितौसर्वतः१

भावार्थ—जिनका निष्कलंकित निर्मल यश समस्त दिशाओं में व्याप रहाहै, विद्वान लोग जिनकी शुभ कीर्ति का सर्वत्र कीर्तन करतेहैं, जो शान्त स्वभाव वाले, आत्म ध्यान में मग्न, और त्रिकाल विचार रूपी समुद्र में स्नान करने वालेहै वे स्वामी हरिप्रसाद जी मुनी इस प्रथवी पर सर्व प्रकार से धन्यहै ॥१॥

यैस्तीर्थेष्वनिशंदयालुहृदयैरभ्यागता भूरिशः ।

---

* स्वामी हरिप्रसादजी का जीवन चरित्र विचार माला सटीक मे छपिआहै ॥

पात्राऽन्नादिभिरादरेणविविधैर्ग्रन्थैश्च संप्रीणिताः ॥
अन्यैश्चेष्टमनोरथैर्बहुविधैःसन्तर्पिताः साधवः ।
धन्याःस्वामिहरिप्रसादमुनयस्तेऽस्यांक्षितौसर्वतः २

भावार्थ—जिन दयालु हृदय वालों से तीर्थों में अनेक याचक लोग पात्र, अन्न, ग्रन्थ आदिकों से संतोषित किये गये और साधु लोगों के अन्य प्रकार के कई मनोरथ पूरे किये गये वे स्वामी हरिप्रसाद जी मुनी (मुनि अर्थ साधूओं काहै) इस प्रथ्वी पर सर्व प्रकार से धन्य हैं ॥ २ ॥

सन्त्यस्यां भुवि भूरिशस्तनुभृतःस्वार्थेऽनुरक्ताःपरम्
येवाञ्छन्तिपरार्थमेवसततंते दुर्लभा देहिनः ॥
ज्ञात्वेत्यात्ममनो धनं वपुरिदं यैःस्वंपरार्थेऽर्पितम् ।
धन्याःस्वामिहरिप्रसादमुनयस्तेऽस्यांक्षितौसर्वतः ३

भावार्थ—इस मही में अपने २ स्वार्थ में तत्पर बहुत ही लोगहैं और जो कि दूसरों का फायदा चाहतेहैं वे दुर्लभ ही हैं। यह जान कर जिन्हों ने अपना तन, मन, धन परोपकार में अर्पण कियाहै वे हरिप्रसाद जी महाराज इस प्रथ्वी पर सर्व प्रकार से धन्यहैं ॥ ३ ॥

काश्यां साधुसभाकरालकलिनालुप्तापुरा पाप्मना ।
आसीत्साधुमहात्मनां सुमनसांतत्त्वानभिज्ञैर्जनैः ॥
यैःसाधून्निखिलान्निमन्त्र्यपरितःप्रोज्जीवितासापुनः।
धन्याःस्वामिहरिप्रसादमुनयस्तेऽस्यांक्षितौसर्वतः४

भावार्थ-पहले काशि क्षेत्रमें उत्तम मन वाले साधु महात्माओं की ऐसी सभा तत्वके न जानने वाले मूर्ख लोगों के लड़ाई झगड़ा करने के पाप से लुप्त हो गई थी वह सभा सब विद्वान साधु लोगों को चारों ओर से निमन्त्रण देकर फिर से जिन्होंने स्थापित की वे स्वामी हरिप्रसाद जी महाराज इस पृथ्वी पर सर्व प्रकार से धन्यहैं ॥ ४ ॥

इस समय लोगों की श्री साधु बेला तीर्थ में बहुत ही श्रधा थी कई राजा, अमीर, सेठ और शाहूकार लोग दर्शन को आते थे और रुपयों की थेलिहयां भेट कर अपने हाथ सफल करते थे। साधु और विरक्त महात्माओं को पैसा जमा रक्खने की शास्त्रों में मनाहै अतः स्वामी हरिप्रसाद जी भी जो पैसा आता था वह साधु महात्माओं के सुख के लिए श्री साधुबेला तीर्थ में स्थान बनवाने में व्यय कर देते थे—

वि०सं० १६२६-३० में चन्द्र कूप वि०सं० १९३७ में गुम्बट, (बुरज) वि०सं० १९३१-३४ में गुरु मन्दिर और १६३४ में कोठार बना ॥

वि०सं० १९३० में उत्तर की ओर पिपल वृक्ष से गौघाट तक बन्दर-३१ में ३० वाला आधा बन्दर फिर दूसरी बार गोले पत्थर से भर कर ऊपर सिन्धी पथ्थरका फर्श लगा तथा सिन्धी पत्थर का राज्य घाट से पीपल तक बन्दर —३२ में गौ घाट से देवी घाट तक ३३ में देवी घाट से हरिद्वार घाट तक बन्दर ३४ में राज घाट से कूप से परे तक बन्दर ३६ में हरिद्वार घाट सें कुशावर्त घाट तक बन्दर ३७ में कूप घाट से कुशावर्त घाट सहित तक पका बन्दर बना ॥

वि०सं० १६३७ में कुशावर्त घाट को जाने के लिए ऊपर की सात पौड़ी बनीं ॥ ३७ में गुरु मंदिरके साथ पिछाड़ी दो
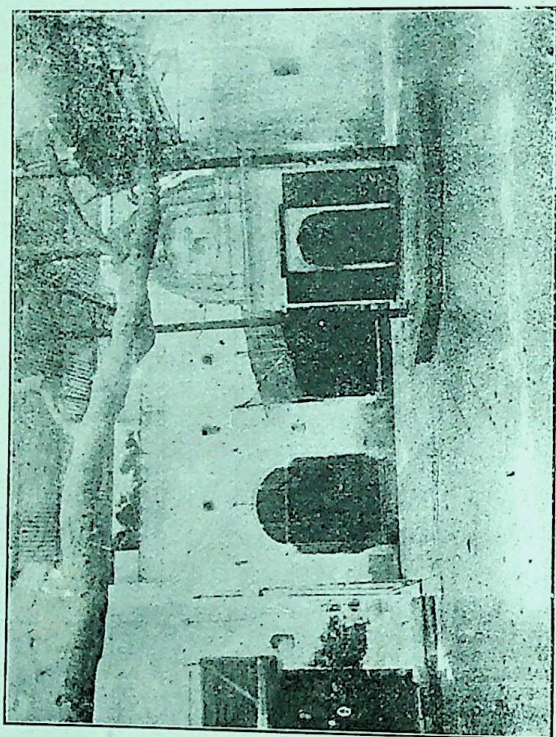
भंडार, पंगत, मंदिर श्रीमहादेवजी

कुटी ३७ में गौघाट डाट की बड़ी कुटी वि०सं० १९३८ में टट्टी की पूर्व की ओर वेट की वडी नाली वनी॥ वि०सं० १९३४ और ३९ में दो वार राज्य घाट और हरिद्वार घाट के मध्यमें सिन्धी पथर का फर्श लगा॥ ३९ में पंगतका शिव मन्दिर बना और ४० में गुरु मन्दर भीतर का संग मर मर का फर्श वना॥

वि०सं० १९३२ भाद्रों शुदी १४ को ३५ वर्ष की आयु भोग कर श्री स्वामी सन्तदासजी शाम के ८ बजे स्वर्ग धाम पधारे। दूसरे दिन प्रातः काल ९ बजे हरिप्रसादजी की सम्मति से श्री स्वामी जयरामदासजी ने स्वामी सन्त दास जी की जगह पर बाबा कर्ण दासजी को कोठारकी गद्दी पर अपने साथ कर लिया॥

वि०सं० १९३६ में स्वामी हरिप्रसादजी हरिद्वार कुम्भ पर गए जहां से बद्री नारायण की यात्रा भी करते आये।

वि०सं० १९३८ में फिर प्रयाग कुम्भ पर गए और दो धाम रामेश्वर तथा दोनों द्वारकानाथ से भी होते आए। दोनों वार तीर्थोंपर विद्वानों की सभाएं, भण्डारे आदि लगाते रहे ३९ और ४० में समस्त बंदरों (डंगे) दो २ रदे चौगिरद ऊचे कीया तथा समस्त घाटोंकी दो २ पौड़ी ऊपरिकी ऊचीकर जास्ती बनायी चौगिरद बनेरा (पलेवरा) सहित बना॥

श्री स्वामी हरिप्रसाद जी उदासीन— के शिश्यों (चेलों) का विवरण इस प्रकारहै॥

१-बावा आत्मप्रसादजी— १९२१ मकर संक्रान्त के दिन शिश्य (चेला) हुए॥

२-बावा बालाप्रसादजी— वि०सं० १९३४ वैशाखशुदी १५ में शिश्य (चेला) हुए॥

३-बावा जयप्रसादजी- ये १९३४ आषाढ़ वदी २ को शिश्य (चेला) हुए और ६५ वर्ष की आयू में १९६७ श्रावण सुदी ११ को श्री साधु बेला तीर्थ में देव लोक पधारे।

४-बावा हरिशरणप्रसादजी- १९३५ अखाड़ वदी २ प्रथम चेला भया॥

५-बावा कृष्णप्रसादजी- वि०सं० १९३५ आषाढ़ वदी २ को द्वतीय चेला हुए।

६- श्री स्वामी अचलप्रसादजी - वि०सं० १९४० मार्ग शीर्ष वदी ९ दिनके दो बजे शिश्य (चेले) हुए॥

स्वामी हरिप्रसाद जी अब ७५ वर्ष भोगचुके थे अतः वे वि०सं० १९४० के मार्ग शीर्ष कृष्णा ९ दिनके दो बजे शरीर त्याग करते भए। देव लोक गमनसे पहले स्वामी अचल प्रसादजी को अपनी कृपा का पूर्ण पात्र समझ कर गद्दीका तिलक दे गए और उसी ही दिन उन को उदासीन सम्प्रदाय में प्रवेश कराके भीतर बाहर ब्रह्मानन्द के रङ्ग से रञ्जित कर दिया॥

६ – श्री गुरू स्वामी अचलप्रसाद जी उदासीन

वि०सं० १९४० मार्गशीर्ष वदी ९ संध्या ४ बजे से वि०सं० १९४३ ज्येष्ठ वदी १४ मंगलवार दिनके दो बजे तक गद्दी परिरहे)

श्री गुरू उदासीन स्वामी हरिप्रसादजी के पश्चात् उसी ही दिन शाम को ४ बजे बावा कर्णदास जी ने स्वामी अचलप्रसाद उदासीन जी को गद्दी पर बिठाके राज्याभिषेक किया। ये स्वामी जी लखीसरदास नाम से सिन्धु देश वर्ती लुकमान नगर के
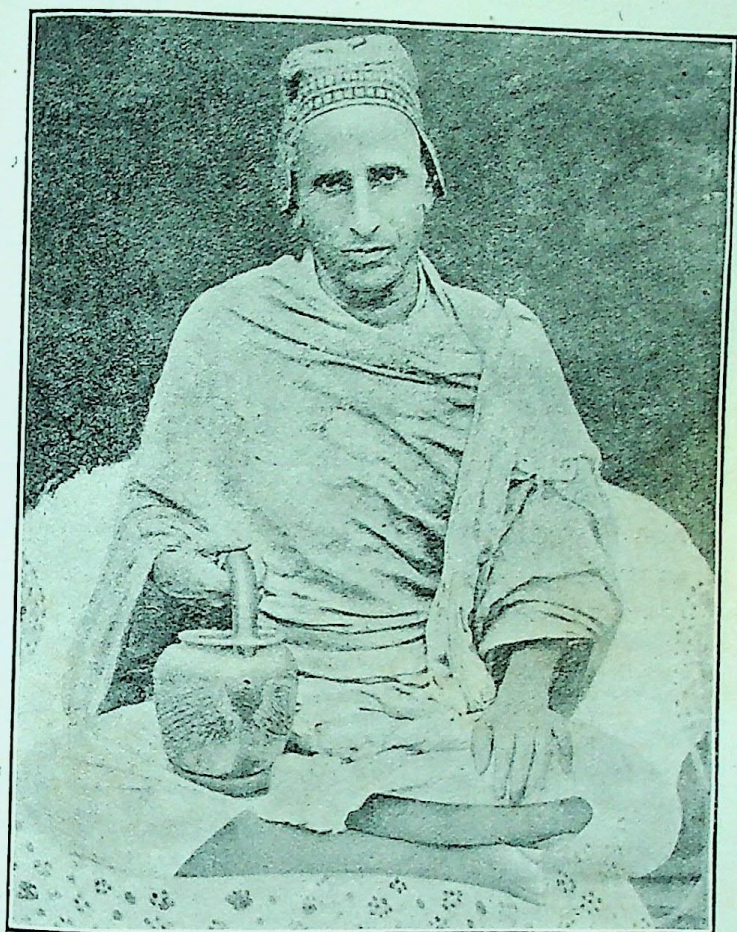
श्री १०८ स्वामी अचल प्रसादजी महाराज उदासीन

समीप टराडा निहाल खान के लक्षाधीश सेठियों में से थे। धर्माचार अनुसार ग्रहस्थ धर्म पूरा करके वृद्धावस्था में स्वामी हरिप्रसादजी की शरण में आके रहने लगे ॥

आपके दिनों में वि०सं० १९४०-४१ में गुरु मन्दिर के भीतर का फर्श संगमरमर लग कर समाप्त हुआ और तखत संगमरमर का बना वि०सं० १६४१ में भण्डार वाली जगह बनी ४२-४३ में बंगला लांढी बनी ॥ शीघ्र ही स्वामीजी का चित्त उपराम होगया और वि०सं० १९४३ ज्येष्ठ कृष्णा १४ मंगल वार दिनके दो बजे गद्दी छोड़ दीया ज्येष्ठ शुदी ७ उसी साल के शाम को ५ बजे तीर्थ यात्रा पर चले गए और वि०सं० १६६६ माघ सुदी १२ मंगल वार संध्या ५॥ बजे को अपने गुरुद्वारे के सामने तपो बन में देव लोक पधारे ॥ १३ बुधवार मध्यान ११ बजे जल समाधि कीया ॥ आप की आयू ८५ वर्ष की पूर्ण थी ॥

७—श्रीगुरू स्वामी जयरामदासजी उदासीन।

(वि०सं० १९४३ ज्येष्ठ वदी १४ मंगलवार दिनके दोबजे से वि०सं० १६५० प्रथम आषाड़ वदी ८ बुधवार संध्या के ४ बजे तक गद्दी परिरहे)

श्री स्वामी अचल प्रसादजी ने जाने से ८ दिन पहले वि०सं० १९४३ ज्येष्ठ वदी १४ को मंगल वार दिन के दोबजे गद्दी पर श्री स्वामी जयराम दासजी को बिठाया। क्यों न बिठावें इनसे बढ़ कर उस समय और कौन था आपको तो १५ वर्ष पहले ही श्री स्वामी हरिनारायण दास जी ने युवराज नियत किया था और स्वामी सन्तदासजी के पीछे आप सिंहासनासीन हो सकते थे किन्तु आप बड़े ही निस्स्वार्थी तथा निर्मान थे, अपने मान, बड़ाई और अधिपत्य की कुछ भी परवा न कर

गद्दी पर दो महात्माओं को बैठने दिया ये आप के त्याग अत्यन्त सराहनीयहैं।

आप का जन्म जोधपुर रयास्त के पचपदुरा तालुका के बालोतरा गाम का था। वर्ण के राजपूत क्षत्रीय और योधासिंह के नाम से ख्यात थे। ३४ वर्ष की आयू में ग्रह कुटंम्ब का त्याग कर ईश्वर परायण रह कर जन्म सफल करने के लिए पूर्ण गुरु की खोज में निकले॥ वि०सं० १९२४ के कार्तिक वदी २ को श्री साधुबेला तीर्थ में आकर प्राप्त हुए और वही परम पावन स्थान सुसाधुओं से सज्जित देख श्री गुरू उदासीन स्वामीहरिनारायण दासजी के शिश्य (चेला) बन कर वि०सं० १९२५ के विजय दशमी पर उदासीन सम्प्रदाय को सुशोभित करने लगे। आप के दिनों में ये स्थान बने:—

वि०सं० १९४४ में गुरु मन्दिर के वराण्डे का संगमरमर फर्श लगा। वि०सं० १९४७ में पंगत की साथ वाली अन्न कुटियाएं बनी। ४९-५० में सभा मण्डल की लकड़ी की छत्त लगी और गद्दी वाला सिंहासन और नीचेका संगमरमर फर्श बन कर तय्यार हो गया। पास में मट्टों वाली जगह भी बनीं॥

अब आपका यात्रा प्रसंग वर्णन करतेहैं। जैसे आपके पूर्वज कुम्भ आदि पर्वों पर तीर्थ यात्रा करते रहे तैसे आप ने भी यह नियम नहीं छोड़ा॥ ठीकहै छोड़ना भी नहीं चाहिए था क्यों कि तीर्थों पर कई पापी लोग आकर अपनें पाप धो जाया करतेहैं तब अपने को पावन करने के लिए तीर्थ वृन्द आप जैसे महात्माओं के पद रजके कांक्षी रहते हैं। अतः आप वि०सं० १९४४ में प्रयाग राज की अर्ध कुम्भी पर गए॥ वि०सं० १९४८ में हरिद्वारका कुम्भ किया वि०सं० १९४९ में हरिद्वारकी महावारुणी का मेला किया॥

जब २ तीर्थों पर गए तब २ भण्डारे दान पुण्य आदि करते हुए

श्री १०८ पूज्यपाद गुरु स्वामी जयरामदासजी
महाराज उदासीन।

अपने गुरुओं के नाम को अतिविस्तृत रूप में विख्यात करते और कुम्भों पर छावनी पाते रहे ॥

वहां से लौट कर वि०सं० १९५० की ज्येष्ठ शुदी द्वितीया चन्द्रवार को प्रातः ६ बजे आपने संगमरमर के गद्दी वाला नवीन बनें सिंहासनपरि विराजते भए ॥

श्रीगुरू उदासीन स्वामी जयरामदास जी के शिष्यों (चेलों) का संक्षिप्त ब्योरा इस प्रकारहै :-

नं०	शुभ नाम	गुरू उदासीन सम्प्रदाय में आने की मिति	विषेश विवर्ण
१	बाबा केवलदासजी	१९४३ ज्येष्ठवदी १४ मंगल वार दिनके दोबजे	१६५० ज्येष्ठ. सु. ११ प्रातः चारबजे हरिद्वार में ६५ वर्ष में देवलोक पधारे
२	श्री स्वामी हरिनाम दास जी	१९४४ अश्विन. शुदी १५	वर्तमानासिंहासनपर विराजमान हैं ॥
३	बाबा सन्तदास जी	१९४६माघसन्क्रान्ति	१९५३ ज्येष्ठ शुदी११ को देव लोक पधारे प्रातः ११वजे श्रीसाधु बेला तीर्थ में॥
४	बाबा गङ्गादास जी	१६४८ हरिद्वार कुम्भ पर (कुम्भके दिन)	१८ वर्षकी आयु में १६६१ में वैकुण्ठलोक पधारे फाल्गुण शुदी६ श्रीसाधुबेला तीर्थ में
५	बाबा आत्मादासजी	१९४९ माघ संक्रान्त	
६	बाबा ठाकुरदासजी	१९४९ माघ संक्रान्त	
७	बाबा बसन्तदासजी	१९४९ बसन्त पंचमी	१९५३ श्रावन शुदीमें तीर्थ से चलेगए
८	बाबा हरिशरण जी	१९४९ बसन्त पंचमी	अबतक श्री साधु बेलातीर्थ में हैं ॥

वि०सं० १९५० के प्रथम (इस साल दो अखाड़ थे) अषाड़ वदी अष्टमी बुधवार शाम को ४ बजे ६० वर्ष की अवस्था में श्री गुरू उदासीन स्वामी जयरामदास जी देव लोक को पधारे। इन का शरीर श्री सिन्धु गङ्गा के परम पुनीत जलमें समाधि किया गया। उसी समय वही समारोह रहा जो श्री स्वामी वनखण्डी जी महाराज तथा अन्य स्वामियों के समय पर हुआ था ॥

देव लोक गमन से पूर्व उसी दिन प्रातः ४ बजे वे अपने ज्येष्ठ शिश्य (चेला) स्वामी हरिनाम दास जी को गद्दी का मालिक बना कर उनको अपना भगवां चोला और सिरोपा देकर मस्तक पर तिलक भभूती लगा कर बावा कर्णदास जी के हाथ में सुपर्द करते भए ॥

अष्टम सर्ग

८. श्रीगुरू स्वामी हरिनामदासजी उदासीन।

[वि०सं० १६५० प्रथम (पहिला) आषाढ़ वदी ८ बुधवार संध्या ५ बजे से आजतक गद्दी परिहैं]

श्री गुरू उदासीन स्वामी जयरामदास जी के पीछे श्री स्वामी हरिनामदासजी ने सिंहासन को सुशोभित किया जिनका राज्याभिषेक बावा कर्ण दास उदासीन जी ने किया था। आज तक संगमरमर के सफेद सिंहासन पर ऐसे शोभा देतेहैं मानों कैलास पर्वत पर श्री शङ्कर जी बैठे हुएहैं। चन्द्रमा के जैसे शीतल, सूर्य के समान तेजस्वी समुद्र के जैसे गम्भीरहैं॥ ज्ञान और विद्या के तो भण्डारहैं॥ शान्ति कोई आप से ही सीख लेवे। मधुर भाषणता आप की प्रशंसनीय ही है॥

सब धरती कागज़ करूं, लेखन सब वनराय।
सात सिन्धु की मस करूं, तव गुण लिखे न जाय॥

आप चाहें तो प्रथ्वी भर के समस्त सुख ले सकतेहैं किन्तु नहीं आपने सब ऐश अशरतों को तिलाञ्जलि दे कर केवल शरीर पोछण और स्वास्थ्य रक्षा मात्र के लिए ही खान पान आदि व्यवहार रक्खाहै॥ आपकी इच्छा होवे तो बड़ी २ कीमत वाले

श्रीमान् बाबा हरीदासजी उदासीन श्री साधुबेलातीर्थ के गद्दीधर श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन

वस्त्र पहन सकतेहैं किन्तु नहीं आप खादी तक पहन लेतेहैं ॥ आप चाहें तो घोड़े गाड़ियां, हाथी और मोटरें रक्ख सकतेहैं किन्तु नहीं ऐसे आनन्द लेने में आप अपने साधुत्व की हानि समझतेहैं ॥ आप चाहें तो अपने खाने के लिए नित्य कई स्वादिष्ट पदार्थ बनवा कर खा सकतेहैं किन्तु नहीं जो कुछ भण्डार में बनताहै वह सब साधुओं और यात्रियों से मिल कर पंक्तिमें बैठ कर खातेहैं॥ इन गुणों से केवल सिन्धु देश में नहीं किन्तु भारत वर्ष के कई अन्य प्रान्तों में भी आप सर्वथा पूजनीय दृष्टि से देखे जाते है,॥ सर्वदा काल पार्मार्थिक कार्यों और हरि भजन में निमग्न, प्रसन्नवदन शान्तात्मा तथा कोमल स्वभाव रहते है, सिन्धु देशका कोई ऐसा धार्मिक कार्य नहीं होगाजहां थोड़ी बहुता आप की सहायता न पहुंची हो गौभक्त और पके हिन्दू सनातनधर्मी उदासीन भेषभूष्णहैं ॥ विद्या प्रचार में भी दत्तचित्त हो विद्वानों का सत्कार सब से बढ़ कर करते हैं। क्या कहूं कहां तक आपकी प्रशंसा करूं, आप सर्वथा, सर्वत्र और सर्वदा पूजा और स्तुति के योग्यहैं ॥

आप का जन्म भी श्री सिन्धु गङ्गा के पवित्र तट पर नवीन सक्खर नगर में वैश्यकुलावतंसों के ग्रह में हुआ था॥ जन्म का नाम भी परम पवित्र "नारायण" है॥ वि०सं० १६३७ पोष कृष्णा १० रविवार था जब आपने जन्म लिया और सात वर्ष की अवस्था में वि०सं० १६४४ आश्विन शुक्ला १५ को श्री स्वामी जयरामदास जी के चेला हुए और वि०सं० १६५० में पहले आषाढ़ वदी ८ बुधवार संध्या के ५ बजे गद्दी पर अपने गुरुओं की करुणा मयी दृष्टि होनेसे बैठते भए ॥

इसमें किसी को भी आना कानी नहीं करनी होगी कि श्री साधुबेला एक अपूर्व दर्शनयि तीर्थ स्थानहै। आपके कटि बद्ध पुर्षार्थ से तो वह और भी दिव्य और रमणीक बन गयाहै

यह सिन्धु देश के लिए एक गौरव की बातहै जहां कि एक ऐसा मनोहर तीर्थ स्थलहै जो कि भारत वर्ष भर में अद्वितीय है ॥ आपके दिनों में निम्न लिखित स्थान बनेहैं यथाः-

वि०सं० १९५१-५२ राज घाट की ड्योढी पकी बनी। ५३—५४ में राम झरोखा के पास वाली लांढी की चार कुटियाएं ऊपर की जगहों याने मकान सहित। ५४ में हरिद्वार घाट और गौ घाट का फर्श। ५५ में देवी घाट का थल्हा सिन्धीपत्थर का, और गुरु मन्दिर के उत्तर—पश्चिम सिन्धी पत्थर का फर्श ५४ में गौ घाट के पास डाट कुटिया ५५ में गौघाट के साथ की बाहर की बड़ी कुटिया बनीं।

५६-५७ में कूप के चारों तर्फ फर्श सिन्धी पत्थर का और चटनी थल्हे का फर्श तथा छत और भंडार बर्तन मलनें वाला दूसरा थल्हा और कुशावर्त घाट के ऊपर बटवृक्ष वाले का फर्श, ५८ में तुल्सी थल्हा संगमरमर का। ५९ में कोठार के पीछे का छोटा थल्हा संगमरमर का और मटों की नालीसें लेकर गणेश घाट का फर्श सिन्धी पत्थर का बनां ॥

६० में भण्डारे का फर्श अम्बाले के पत्थर का ; और बड़ी गोपाल कुञ्ज की सिन्धी पत्थर की बड़ी दिवार ऊपर के छोटे घाट सहित बनां।

६०—६१ में बन्दर की टीप चौगिरद लगी।

६१ में गोपाल कुञ्ज का फर्श और बेट पानी में कुशावर्त घाट के नीचे का घाट और फर्श सिन्धी पत्थर का बनां।

६१-६२ में गुरु मन्दिर की १५ बड़ी और २ छोटी छतें ॥

६२ में आड़ा खोड़ के भीतर और पीछेकी गली में थल्हे सहित फर्श सिन्धी पत्थर का बनां।

६३—६४ में राम झरोखा पौड़ी समेत बना और ६४ में
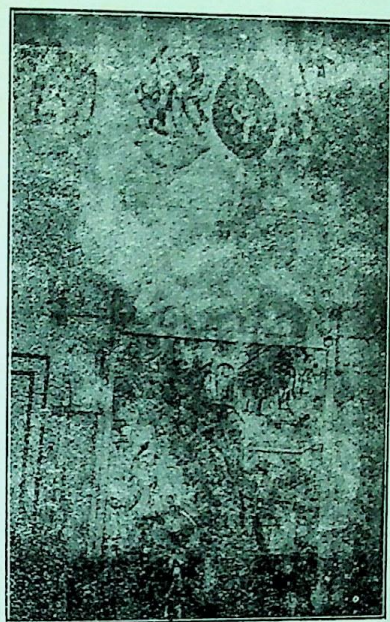
(ख) गुरु मंदिर के पश्चिम दिशाका चित्र

उसी भीतर विद्यालय स्थापन हुआ। हवा बन्दर राम घाट सहित और कुशावर्त घाट ऊपर दो नींम की कुटियाएं, और पंगत के ऊपर तीन लोहे के छप्पर लगे॥ श्री छोटा साधुबेला तीर्थ जीता गया और राम झरोखे के नीचे लाल पत्थर का फर्श लगा॥ ६४-६५ में महादेव वाली पंगत में खट्टू पत्थर का फर्श चौगिरद लगा॥

६५ में भीतर लाण्ढी को तथा बराण्डे सहित में और गुरु मन्दिर के नीचे दो कुटी को एक कर कुटि में और पंगत के अन्न कुटि में खट्टू पत्थर का फर्श लगा।

६६ में सभा मण्डलकी छत और मट्टों की जगह और ६६ में सूर्य्य कूप औ शामिल साथका बन्दर विष्णु घाट तक बना। और भीतरले गुरु मन्दिर के बराण्डे की तीन दिवालें जिन पर जय विजय, दो शेर, दो मोरों, और दो हाथियों, के सहित संगमरमर की बनी॥

६७-६८ में बड़ी दो डाट वाली टांकी वाली जगह हल्ट पानी वाली। ६७ में देवीजी के मन्दिर में और कोठार में ईंटों का फर्श ६७-६८ में पुरीख खानां (टट्टी) बाहर के फर्श समेत ६८ में आड़ा खोड के साथ की दूसरी कुटिया में खट्टू फर्श लगा॥

६९ में सभा मण्डल की पौड़ी संगमरमर की तीनडाके, और लाण्ढी के भीतर दो बड़ी ईंटों की डाटें और टांकी के पास जल खींचने के दो हौज यानें दो हलट खुहाडे कुटी सहित॥ और कुशा घाट के पास बट वाली बड़ी कुटिया॥ विष्णु घाट सहित से शिव घाट तक बन्दर। ६९-७० में गुरुमन्दिर के बाहिर थमलों डाटों ऊपरि शिषरकी दो छत्रियों समेतं और बाहिर की तीन दिवारें संगमरमर की। ७० में तुलसी थल्हे का और पंगत का बड़ा लोहे का छपर बना॥

७०--७१ में सत्य नारायण का बड़ा थल्हा दोनों तरफ की पौड़ियों समेत और भण्डारकूप के उत्तर तरफ वाली दो कुटियाएं बड़ी, छोटी चटनी वाली, और कूप के पूर्व की तर्फ बर्तन तथा आचार मुरबे रखनेकी दुमंजली जगह बाहिर साथ छोटा सिन्धी पत्थर के नीचे वाले थल्हे सहित बनां ॥

वि०सं० १९६९-७०-७१ में कैलास महादेव जी के नीचे का गुंम्मज बनां ॥

७०-७१-७२-७३ तक कैलास महादेव का मन्दिर बाहिर के संगमरमर की परिक्रिमा तथा ऊचा फर्श लोहे का जंगले सहित और नीचे की दो जगाहिं पौड़ी वाली बड़ी कुटि, औनीचे के वराण्डे के रंगीन ईंटों के फ़र्श सहित बनां ॥

७१-७२ में सत्य नारायण के साथ वाली कुटी विराण्डे वाले के ईंट फर्श सहित बनी ॥

७२-७३—७४ में राम घाट की और दोनों तर्फ वाली सिन्धी पत्थर की लंबीयां कुर्सी संगमरमर के फर्श सहित बनी॥

७२—७३ दुःख भञ्जन घाट चार बुर्जों और बेट पानी वाले थल्हे सहित त्रिवेणी घाट, यमुना घाट ऊंचे कोने तक बन्दर समेत और ७२ में * नारायण घारी की सिन्धी पत्थरकी लंबी चौड़ी गहिरी नीवं पश्चम उत्तर वाली औ पानी वाले थल्हे समेत बनी इसी बहतर संमत वाले को ७४ में डंगे को जल सें ऊचा कीया ॥

७३-७४ में पंगत वाली आटे दाल की अन्नकुटी नीचे की तथा ऊपरकी जगह पकी ईंटों की ७५ में गर्डर लगा रस्ता बना जंगले सहित और गुरु मन्दिर के पिछाड़ी दोनों कुटी को एक

* अंग्रेजी इतहासमें नारायणकी जगह नानक भूल से छप गयाहै ॥
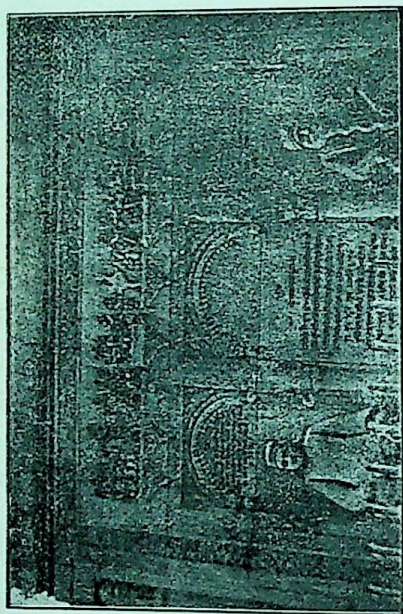
स्वामी जयरामदासजी   बाबा कर्णदासजी
गुरू मंदिर के दक्षिण दिशाका चित्र

कर ऊंची डाट की ऊपरि वाली छत करी नीचे की छत दोनों कुटी की बराबर करी पश्चम दिशा वाली पिछाड़ी भीत संगमर मर के चौवीस चित्रों वाली संगमरमर की दिवारें बनीं और दक्षिण कोनें में स्वामी जी की और बावा जी की मूर्ति लगी।
७५ में गुरु मंदिर पैड़ी वाली ऊपरि की दो कुटी को एककुटी कर ऊंची करी॥

७५ में कुशावर्त घाट के बुर्ज सें लेकर बन्दर सिन्धी पत्थर का सरस्वती घाट सूर्य घाट सहित बनां॥

७५— में गुरु मंदिर के उत्तर (देवी घाट के दक्षिण) बड़ा और साथ का छोटा संगमरमर का थला बना॥

७६ में गुरु मन्दिर के पूर्व बुर्ज और थले बीच सिन्धी पथ्थर कुर्शी परि संगमरमर की कुर्शी लगी॥

७५-७६-७७ मेंगुरु मन्दिर के पूर्व चौगान में फर्श संगमरमर का और दक्षिण में छोटा संगमरमर का दर्वाजा बना॥

७६-७७-७८ गुरु मन्दिर के ऊपर कुर्शी तथा जाली वाले पिञ्जरे तथा पश्चिम वाली दो छत्रियां तथा भीतर वाहिर की ताकियों में दासा और खड़ाऊ और दो झरोखे लगे तथा बाहर पश्चिम की छोटी दीवार शिखर तक और आधी दक्षिण की दीवार शिखर तक संगमरमरकी पूर्ण हुई॥

७७-७८ गुरु मन्दिर के नीचे तीनों बराण्डों में संगमरमर की फूलदार डाट लगी॥

७५—७६—७७ मेंगुरु मन्दिर के उत्तर चौगान में संगमरमर का फर्श लगा तथा मूर्त्ति वाला झंगले के भीतरि संगमरमर का फर्श लगा॥

वि०सं० ७५-७६-७७ में देवी घाट पर संगमरमर घाट का दासा, खड़ाऊ और ऊपर फर्श लगा तथा साथ में घाट के

उत्तर तर्फ संगमरमर की छोटी नींम थली तथा थला गलीचे नमूने वाला लंबी थली पर सारे फर्श लगा तथा घाट के चौगान पश्चम में लगा और गुरु मन्दर के अगाड़ी पूर्व दिशा तर्फ (सिन्धी पत्थर परि) चौक एक डाके सहित लगा ॥

बम्बई घाट, राम घाट, कुञ्जगली

७७ में रामघाट दो कुटियाएं दो मंजला पकी ईंटों का चौबारा बना तथा कुञ्जगली के पीलपावे पकी ईंटों के बने और ऊपर तीन कुटियाएं पकी ईंटों की बनीं तथा टट्टियों के दक्षिण भंगी के रहने वास्ते कुटिया बनी ॥

७७—७८ बम्बई घाट की पौड़ी ऊपर वाली के साथ संग-मरमर का थला बना और बम्बई घाट के दोनों बुर्जों पर गलीचा फर्श संगमरमर का बना ॥

७५—७६—७७—७८ राम घाट के पूर्व कुर्शी पर गलीचा फर्श संगमरमर का लगकर टट्टियों तक तय्यार हुआ ॥ पश्चिम को भी फर्श लगकर तय्यार हुआ ॥

छोटा साधु बेला सत्य नारायण

७६—७७ में सत्य नारायण के पूर्व संगमरमर का थला बना तथा ७७ में सत्य नारायण के भीतर खड़ाऊ तथा फर्श संगमरमर लगा और दीवार में सीमेंटका पलस्तर हुआ ठाकुर मूर्ति बडी रखी ॥

७८ में कैलास महादेव के गण का शिखर वाला छोटा मन्दिर बना सत्य नारायण मन्दिर के पिछाड़ी पूर्व उतर दक्षण तर्फ कुटिआ के आगे सिन्धी पत्थर का फर्श और दो खम्भा सिन्धी पत्थर के दर्वाजे वास्ते बनें ॥

७८ में सूर्य घाट के पास बैलों के लिए पक्की ईंटों की लाण्ढी बनी ।

रेज़की कार्य
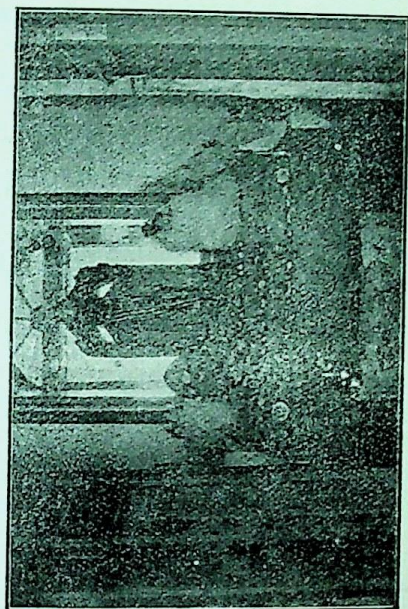
श्री गुरू वनखण्डी बागमें श्री सत्यनारायणजी मन्दिर
लक्ष्मी . तुलशी . सहित

७२ में देवी घाट के अगाड़ी को लोहेका फाटक बनां

७४ में गुरु मन्दिर के पश्चिम दक्षिण मूर्तियों के आगे लोहे का जंगला बना।

१६७४-७५ में लंबा जंगला दो लोहे के दर्वाजे कट्ठे गुरु मन्दर के पश्चिम दिशा वर्ण घाट पास बनें॥

७५ में कुञ्ज गली के पीलपाये ईंटों के पक्के बनवा कर गर्डर लोहे के पाकर ऊपर से लकड़ी के फटे की छत बनवाकर पलस्तर कचा कराया गया।

७५ में संगमरमर के वाड़े लोहे का फाटक तथा उत्तर दक्षिण की दो कंध बनी।

७५ में गुरू मन्दिर के उत्तर तर्फ बगीचे के लिए ईंटों की थली बनी तथा छोटी थल्ही देवी घाट के दोनों किनारों के आगे सिन्धी पत्थर का फर्श लगा॥

७५ में गौघाट और नींम के बीच ईंटों की छोटी पक्की कुटिया बनी।

वि०सं० १६७५ मुंबई घाट रसोई कुटी यात्री पंडित पाठ शाला वालों की.

वि०सं० ७५ गुरू मंदिर पूर्व दिशा शिखर पिंजरा संगमरमर,

वि०सं० ७५ गुरू मंदिर के आगे पूर्व दिशा नीचे फर्श सिंधी पत्थर के ऊपरि संगमरमर नाली के दूसरे पार देवी घाट उत्तर की तर्फ थोड़ा ७८ में संगमरमर लगा,

७४-७५ में चंद्रकूप (भंडार कूप) के साथ ईंटों की छोटी बड़ी डाट वाली एक ग्यारा सौमन पानी की वड़ी टांकी बनी॥

७५—७६ में हरिद्वार घाट के बेट में सिन्धी पत्थर का बन्ध बांध कर घाट से नदी तक कंकरेट चूने साथ मिलाकर भराव पाया। इसी बेट में गौघाट से देवी घाट तक सिन्धी

पत्थर का फर्श (थला) बनां ।

वि०सं० १९७६-७७ गुरु मन्दर के उतर दिशा तर्फ संगमर फर्श चार चौक वाला बनां ,

वि०सं० १९७६-७७ हरिद्वार घाट बावें तर्फ बुर्ज परि संगमर की छत्री बनीं ,

वि०सं० १९७६-७७ हरिद्वार घाट के ऊपरि मध्य में दर्वाजा दो इन्द्र एक हस्ती का बनां ,

७७ पौष वदी ४ में शुरू अन्न पूर्णा देवीजी के मन्दिर में संगमरमर की छत्री और खड़ाऊ तथा थली गंगाजमुनां फर्श लगा तथा पूर्व तर्फ दर्वाज़ा निकाला।

७८ में हनुमान मन्दिर में फर्श संगमरमर का लगा।

७८ में गणेश मन्दिर के पिछाड़ी ब्रह्मालऐ में ईंटों के पीलपावे लगा कर गर्डर पाकर छत बनवा कर भंडार की जगह बनवाई गई और गुरू श्रीचन्द्र मन्दिर बनां ।

७६ में नारायण धारी के उत्तर दिशा के कुवेर घाट से राम तलाई तक बन्दर बना कर जल के लेवल में ऊचा कीया साथ २ राम तलाई तथा तलाई के साथ दो छुड़े पत्थर की दिवारें बनी।

७७ में कुवेर घाट की पिछाड़ी तरफ छुड़े पत्थरकी दिवार बनी तथा बीच में छुड़े पत्थर कंकरेट का भराव पाया। ऐसे बीच का छोटा घाट भी बना मध्य का कृष्ण घाट कोनेंका भैरव घाट बनां ।

७७-७८-७९-८० में राज्य घाट के ऊपर की पकी ईंटों की ड्योंढी गिराकर संगमरमर का बंगले का काम शुरू होकर बनां

७८ में राज्य घाट की पौड़ी सिन्धी पत्थर के ऊपर आगरे
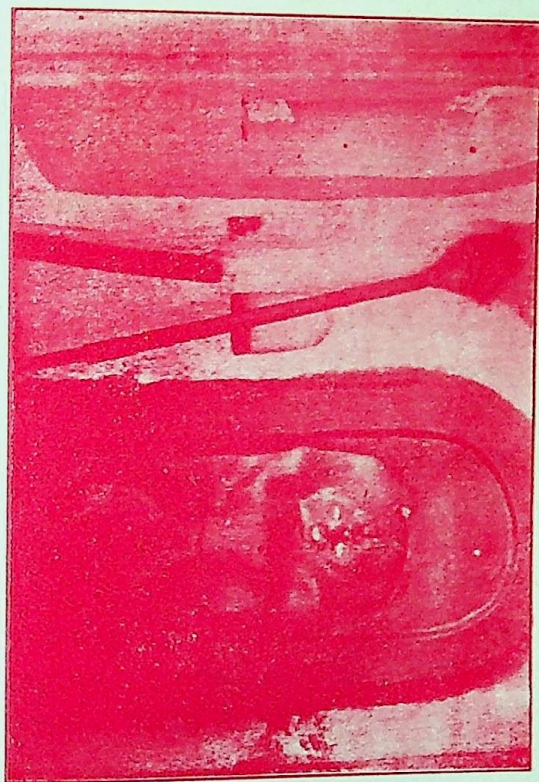
राम झरोखे के सामने मन्दिर श्रीहनुमानजी

का पत्थर लगवा कर बड़ी पौड़ी बनी।

७८ में चन्द्र कूप के पास अंब वृक्ष सें लेकर लंबी काठ गड़ रखने के लिए सिन्धी पत्थर की चूने के साथ दिवार बनी।

वि०सं० १९८३ पानी बगीचे वास्ते मशीन तीर्थ में फिर ८४ में बिजली मशीन, वि०सं० १९८४-८५ श्री साधु बेला तीर्थ छोटे बड़े सारे जगहों में बिजली के थंभे तारें लगाई,

वि०सं० १९८५ रामझरोषा उर्फ पाठशाला के चौगिरद नीचे रस्ते में, लांढी बरांडे में और आटे दाल कुटी में और खूहानींमथला चटनी वाले परि, और छोटा साधुबेला समाधों के थले परि किंकरी चूनां सिमट गच्च लगा, और समाधों के भीतर जगह में गंगा जमुनां संगमरमर फर्श, और पाठशालाके कमरे नीचे ऊपरि में टीनकी चादर छत बनीं औरंगलगा। ८४ में नीचे कुटी, ऊपरि की ८५ में बिजली मशीन के ऊपरि बिजली घर दो कुटी बिरांडे जगले सहित बनीं॥

श्री स्वामी हरिनामदास जी को गद्दी निशीन हुए दो वर्ष और आठ महीने हुए थे तब बाबा कर्णदास उदासीन जी वि०सं० १९५२ के फाल्गुन वदी ४ शनिवार प्रातः दो बजे ८५ वर्ष की आयुमें देव लोक पधारे॥ उनकी जगह पर कोठार की गद्दी पर उसी ४ शनि ११॥ बजे दिनके श्री स्वामी हरिनामदास जी ने अपने ज्येष्ठ चेला बाबा हरीदासजी को बिठाया जो १९५० के श्रावण शुक्ला पूर्णमासी पर सवेरे १० बजे श्री स्वामी हरिनामदास जी के शिश्य (चेले) हुए थे॥

श्रीमान् बाबा ❀ हरीदासजी- आप का जन्म वि०सं० १९२८ मिति मार्ग शीर्ष वदी ६ को देहली नगर में गौड़ ब्राह्मण

❀ आपका शिश्य अद्वैतानन्द इसका शिश्य ईश्वरानन्द वि०सं० १९७६ वैशाष शुदी ३ दिन दोनों कठे बनें॥

के घरकाहै ॥ जन्म का नाम गोपाल शर्माहै पिता का नाम श्री मान् पं० मोहन लाल शर्माहै तथा माता का नाम श्री मती हरिदेवी था ॥ आप के पूर्वज बड़े भारी शिव भक्त थे जिनका बनाया हुआ शिव मन्दिर देहली नगर में श्री यमुना जी के किनारे पर कुरशीया घाट पर आज तक विद्यमानहै॥ ये अपने माता पिता के एक लोते पुत्र थे और तीन वर्ष की आयु में माता के स्वर्ग लोक पधारने पर ये देहली नगर में अपने मामा के घर में रहनें लगे। योग्य उमर में मामाजी ने इनका यज्ञो पवीत संस्कार कराकर वेदाध्ययन कराना आरम्भ किया। मामाजी को कोई पुत्र सन्तान न थी अतः इन को ही अपना पुत्र समझने लगे और ठीक २ ये उनको स्वकीय पुत्र जैसे ही प्रिय थे। वे वृद्ध हो गए थे अत एव अपने भाग्नेयपुत्र का जीते ही लग्न देखने की उनकी वड़ी उत्कण्ठा थी ॥ इस लिए नव वर्ष की अवस्था में ही विवाह करा दिया किन्तु हमारे भावी कोठारी जी अपने पढने में स्वस्थ चित्त रहते थे ॥ मामाजी ने फिर विचार किया कि यदि संस्कृत और हिन्दी के साथ इनको उर्दू और अंग्रेजी की शिक्षा भी दिलाई जाय तो उसकी भविष्यत उन्नती में सुविधा होगी ॥ यह निश्चय कर उनको स्कूल में बिठाया गया जहां उर्दू और अंग्रेजी पढते रहे ॥ होनहार पुरुष बाल्यावस्था से ही जाने जातेहैं ॥

इस रीत्यनुसार श्री मान् गोपाल शर्मा जी भी बाल्यावस्था से ही भगवद्भक्ति और परमार्थ में दृष्टि रक्खते थे और अपना बहुत सा समय साधु सेवा और सत्सङ्ग में व्यतीत करते थे। यद्यपि इनके मामा जी तथा पिता जी इनके ऐसे व्यवहार से अप्रसन्न रहते थे तो भी इन्होंने अपनी टेव नहीं छोड़ी और साधु समागम में दिन प्रति दिन अधिक ध्यान देने लगे ॥

वहुत काल तक सत्सङ्ग करने से उनको ग्रहस्थाश्रम उपाधि रूप भासने लगा किसी समय में एक ब्रह्मज्ञानी महात्मा का समागम हुआ जिनके सत्संग से उनको वहुत सा लाभ पहुंचा और जो शङ्काएं उनके चित्त में थी उनका पूर्णतया समाधान हो गया। कई दिनों तक कई वैराग्यवान महात्माओं के सत्सङ्ग से माता, पिता, स्त्री आदिकों से हट तो गया ही था अतः वे ग्रह-कुटम्ब रूपी पिञ्जरे से उड़ने का विचार करने लगे। अब उनको पिता और अपने पालन पोषण की चिन्ता लगी, कुछ विचार के पश्चात् उनको भर्तृहरि जी का यह पद फुर आया किः—

का चिन्ता मम जीवने यदिहरि र्विश्वम्भरोगीयते

अर्थात् यदि हरि परमात्मा विश्वम्भर कहा गयाहै तो मेरे जीवन की क्या चिन्ताहै? जहां इतनी सारी विश्वकी पालना होतीहै तहां क्या हमारे पिता, स्त्री और मैं ही रह जायेंगे? यह कभी नहीं हो सकता। कभी भी, कहां भी और कैसे भी रहें तो हमारी पालना अवश्य होनीहै॥ ऐसी मन में ठान कर वे ऊनवीस वर्ष की आयु में अपने सारे ग्रह परिवार का त्याग कर चल दिये। वि.सं. १९४३ में अलवर आये, वहां से जयपुर, अजमेर होते हुए पुष्कर राज में पदारोपण किया। वहां कई दिन रह कर पाली वालोतरा होते हुए धरणी धर की झाड़ी में रहे वहां भी मनोवाञ्छित कार्य पूर्ण न होने से गुजरात ध्रांगध्रा जोड़ाऊ होते हुए वम्बई आये फिर द्वारका गये यहां पर कई दिन ठहरे पश्चात् बेट में गये बाद नाव में बैठ कर माण्डवी होते हुए नारायण सरोवर गये वहां पर स्नान करके आशा पूरी देवी को गए वहां से धनों धर में नाथों के स्थान में कई दिन रहे फिर भुज अंजरा मालीया मोरबी राजकोट जेतपुर, होते हुए गिरिनार

को गए जहां हनुमानधारा में रहने लगे वहां बहुत काल रहे फिर सुदामा पुरी को गए जहां से पुनः दीप बन्दर में आए, वहां पर एक योगिराज नागा बाबा वैष्णव भक्त रहते थे वे बड़े सिद्ध थे उनके पास जो कोई आता था उसको वहां भोजन के लिए एक मुट्ठी भर चांवल मिलते थे जिनको पका कर खाने से एक मनुष्य तृप्त हो जाताहै॥ उनके पास बाबा हरिदासजी भी बहुत दिन रह कर भक्ति योग सीखते रहे॥ वहां से फिर खम्भात भड़ोच होते हुए बम्बई आए जहां से फिर रामेश्वर को गए मदरास, मलेबार, पद्मनाभ, जनार्दन, छोटे बड़े नारायण और कन्या कुमारी तक गए यह मलबार की यात्रा महीना भर की। कन्या कुमारी से होकर समुद्र के किनारे होते १५० कोस पैदल चल कर कार्तिक स्वामी के दर्शन किए। फिर जकाऊ बन्दर, ज़ंजीबार होते हुए अदन बन्दर गए॥ जहां कहीं जाते वहां भक्ति मार्ग का उपदेश देते रहते थे। वहां से मसकत, ग्वादर, चुआ वाल बन्दर कीच मकरान होते हुए कराची बन्दर आए फिर एक भक्त जनके आग्रह से लस बेला गए फिर खोरासान खैरान चार बुर्जक शीशतान और बीच वारान होते हुए फरान गए वहां बाबा जी बहुत ही रुग्ण हो गए किन्तु १०-१२ साधु साथ में थे अतः बहुत से क्लेश का सामना न करना पड़ा। ईश्वर कृपा से शीघ्र नीरोग हो गए और ग्रिषिक नगर में आए वहां से वि०सं० १९४७ चैत्र मासमें कन्धार गए वहां चमन से रेलद्वारा श्याला बाग़, गुलस्तान, कोश बंगला, हर्नाई, सिबी होते हुए ढ़ाढर में आए ढ़ाढर से शिकारपुर आकर प्राप्त हुए॥ वहां से वि०सं० १९४७ में माघ सुदी ५ (वसन्तपञ्चमी) को श्री साधुबेला तीर्थ में आए। वि०सं० १९४९ में श्री स्वामी जयरामदासजी के साथ हरिद्वार महावारुणी पर गए॥ वि०सं० १९५० श्रावण सुदी १५ को श्री स्वामी हरिनामदासजी के ज्येष्ठ शिष्य बने और उनके साथ सब

यात्राओं में जाते रहे और बावा हरीदासजी के चेले दूसरे ज्ञानानन्द वि०सं० १६८२ ज्येष्ठ शुदी १२ गुरुवार हुआ। और १६८१-८२ में गौघाट परि दुमजला कुटीआ बनीं।

श्री स्वामी हरिनामदासजी नीचे प्रमाणे तीर्थ यात्रा पर गए वि०सं० १६५० में प्रयाग राज के कुम्भ ※ पर गए, ५७,५८ में तीन धामों की यात्रा की—६० में हरिद्वार के कुम्भ पर ६२ में प्रयाग राज के कुम्भ पर द्वितीय वार और काशी सें फिर श्री स्वामी वनखण्डीजी महाराज की आदि तपो गद्दी भपटियाई धूणी साहिब का दर्शन कर आए। ६५ में गोदावरी के कुम्भ पर अन्न क्षेत्र भेज कर अपने को दानवीर प्रख्यात किया आप नहीं गये थे ६६ में हरिद्वार की अर्ध कुम्भी, और केदारनाथ, बद्रीनाथ, आदिकों से होते हुए हरिद्वार देहरादून मथुरा वृन्दावन गए। ६८ में दिल्लीदर्बार सें प्रयाग राज की अर्ध कुम्भी लखनौ नीम खारण्य सें मुरादाबाद रामगङ्गा हरिद्वार दोनों जगा स्नान कर अमृतसर आये ७२ में द्वितीयवार हरिद्वार के कुम्भ पर गए और ज्वालामुखी ३ देवियों की यात्रा करते आए आते जाते अमृत सर रहे थे। वि०सं० १६७४ प्रयाग कुम्भ माघ कर के पटनां हरीहरि क्षेत्र कलकता जगन्नाथ रामेश्वरादि बम्बईडाकौर अहिमदावाद हेद्रावाद सिन्धु सें ज्येष्ठ शुदी १४ श्री सा. वे. तीर्थ में आये वि०सं० १९७७ आखाढ़ श्रावण भाद्र में गोदावरी कुम्भ पर वि.सं.१९७७-७८ माघ फाल्गुन चैत्र में हरिद्वार की अर्ध कुम्भी पर अन्न क्षेत्र दोनों जगा भेजा आपनहीं गयेथे वि०सं० १९८४ फालगुन चैत्र हरिद्वार कुम्भ कर ऋषिकेश देहरादून जमनोत्री गङ्गोतरी कर लोहौर सें मोटर परि जम्बू कशमीर गये अमृनाथ श्रावण शुदी १५ करी मुलतान होते भाद्रों शुदी ७ शनिवार तीर्थ में आये

※ कुंभ तथा अर्ध कुंभियों पर छावनी पाते रहे

और तीर्थ यात्रा पर जब २ स्वामी जी गएहैं तब २ आप के साथ कई साधु सन्त और ग्रहस्थी लोग भी जाते रहेहैं और वहां अपने भण्डारे खोलते हैं जहां अनेक साधु, महात्मा, ब्राह्मण और दर्शन कर्ता ग्रहस्थी लोग भोजन पाकर तृप्त होते रहे हैं साधुओं और ब्राह्मणों को धन, विद्यार्थियों को पुस्तक वस्त्रहीनों को कपड़े विद्वानों को सन्मान और भेटाएं देकर अपनी कीर्ति चतुर्दशी के निशेश तुल्य परिव्याप्त कर आए हैं समय समय पर यात्रा में आपको कई जगह मान पत्र मिलेहैं कई सभाओं के सभापति बने हो और विद्वान लोग आपकी स्तुति—विषय के श्लोक रच कर अपनी विद्वता से परिचित करते रहेहैं उनमें से नमूने तोर सनाढय पाठशाला महिला आसी बनारस के आशुकवि श्रीमान् पं० अयोध्या प्रसादजी का शतरंज (शत्रुरञ्जन) यहां दिया जाताहैं, जिन्होंने वि०सं० १६७४ के प्रयागराज के कुम्भ पर भेट किया था—

॥ शत्रुरण जय प्रबन्धः ॥

श्री मत्सक्खर सिन्ध्वन्तस्साधुवेलां महत्तमाः ।
ये वतीर्णा महात्मानो वनखण्ड तपस्विनः ॥ १ ॥
श्री १०८ हरिनामदासाख्यस्वामि नाम्ना महोदयाः ।
महत्सु सत्सु विद्वत्सु विजयन्तेच्छदातृषु ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीस्वामी वनखण्डा जी महाराज के सक्खर सिन्धु मध्य वर्ती श्री साधुवेला में जिन्होंने अवतार धारण कियाहै वे श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी महोदय, महात्माओं, विद्वानों और कल्याण कारकों में जय को प्राप्त होवें ।
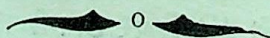
साश्रीरास्तां १	गीस्मामस्थ ६	माये शाना ५१	श्रीवत्साद्या ८	सुश्रीदात्री ११	वस्वागारा ६०	श्रीमत्सेव्या ५७	संवित्पूज्या ५४
रामध्याता ५०	साधुप्राप्ता १३	दाव द्रौग्ध्री २	ध्यानप्राथा ६१	श्रीहर्षस्था ५२	स्वामिषिष्टा ५५	वाहन्धात्री १०	भ्राजद्रूपा ५९
सत्सङ्गस्था ५	भावेनाप्ता ६४	ज्ञाती शाना ७	श्रीखण्डस्थ १२	वारिप्रीता ९	ज्ञानाकारा ५८	सत्सुप्रीता ५३	रायन्देयात् ५६
वाक्यस्थाया १४	मालाधर्त्री ४९	वर्णान् पात्री ६२	दण्डिस्वाप्ता ३	नानारूपा १६	नाम्ना ज्ञेया ४७	वासश्रेष्ठा ३६	शान्तमग्ना ३१
तारस्यूता ६२	धामस्वच्छ ४	नाम स्पष्टा १५	प्रातर्गेया ४८	धीमत्पूज्या ३५	वाम क्रुद्धा ३०	वित्सु प्रीता १७	याच्छ स्वच्छा ४६
यालिन्धुस्था २४	देहस्वृद्धा २१	स्वाहापूज्या २६	पापघ्नन्ती ४१	वेदाधारा ४४	राहोर्घ्नन्ती ३९	भाविज्ञात्री ३२	नादाधारा ३७
सास्वान्त स्था २८	वित्तन्दात्री ४२	यात्माक्षेमा २३	स्वास्विष्टा याः २०	दासान्धात्री २९	भेदद्रोग्घ्नी ३४	विदज्ञाता ४५	दातृस्वृद्धा १८
दान्तस्वृद्धा २२	रामापात्री २५	दानोन्नेया २८	सानः पातु ४३	मुख्यसुप्रेष्ठा ४०	मायाःकर्त्री १९	भृत्सुज्ञाता ३९	स्वैषुप्रीयात् ३३

शतरंज समझने की रीति–प्रत्येक कोष्ठका दूसरा नम्बर अक्षर लिया जाय तो उपरोक्त दो श्लोक बन जायेंगे छन्द अनुष्टपहै, और इस में पहले मगण होने से शुभ फल दायकहै यथा ,, मो भूमिं सुखमातनोति " मगण भूमि और सुख देने वालाहै ।

संस्कृतज्ञ भले प्रकार जान सकेंगे कि इस शतरञ्ज का रचयिता कैसे न बुद्धिमान महा पण्डित होंगे जहां ऐसे ऐसे महा विद्वान और कवि लोग जिनकी इस प्रकार प्रशंसा करते हों वे क्यों न सर्व साधारण से आदरणीय हों ! इससे यह भी ज्ञात होताहै कि आप स्वयं विद्वानहैं और विद्वानों तथा विद्या की कदर भी कर सकते हो तथा विद्योन्नति-कार्यों को यथा शक्त सहायता भी अति प्रेम से देते और दिलवाते रहते हो ।

श्री स्वामी हरिनामदासजी के शिश्यों का ब्योरा इसप्रकारहै

सं०	शुभ नाम	उदासीन सम्प्रदाय में आने की मिति	विशेष विवरण
१	श्रीमान् बावा हरिदास जी	१९५० श्रावणशुक्ला १५	अबकौठारकीगद्दी परविराजमानहैं॥
२	बावा भगवानदासजी	१९५१श्रावणशुक्ला१५	१९७७भाद्रौंशु. १३ शनि.देवलोकहुआ
३	बावा तरनदास जी	१९५२वैसाखी केदिन	१९६१ मेंस्वर्गलोक पधारे
४	बावा रामदास जी	,, ,, ,,	१९७५कार्तिक व. ४ में श्री. सा. ती.में देहावसान हुआ प्रातः दो बजे॥
५	बावा यमुनादास जी	१९५४आषाढ वदी २	१९८२ माघ शुदी ८ वीर वार
६	बावा स्वरूपदासजी	,, ,, ,,	
७	बावा जगतदासजी	१९५५ वैसाखीकेदिन	१९६७ श्रावणवदी १४ को देवलोक पधारे॥
८	बावाकृपालुदासजी	,, ,, ,,	
९	बाबागोविन्ददासजी	१९६३अश्विनवदी५	
१०	बाबा अमरदासजी	१९६७माघवदी१रवि	वर्तमान धर्मवीर पत्र का अर्बीसिंधीभाषा मेंसम्पादन करतेहैं॥
११	बावा सुन्दरदासजी	१९६८ पोही चन्द्र दिन	१९६९ ज्ये. शु. ११ चले गए पता नही
१२	बावागोपालदासजी	१९६९ पोश शुदी चन्द्र दिन	

नोट – रौणकीदास प्रेमदास ब्रह्मानन्द साधिक शिश्य हुयेथे। आपके राज्य में निम्न लिखित कार्य प्रचलितहैं।

१ श्री गुरु मन्दिर

यहां गुरु ग्रन्थ साहिब जी उदासीनों की कौमीबाणी के पधराए हुएहैं वेद राम चन्द्र मूर्ति शृङ्गार की सजा वट अति मनोहारिणीहै, दर्शन करने से अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैविक तीनों ताप दूर हो जातेहैं भीतर हिण्डोल (हिंदोरा) वाले कोष्ट को चांदी के दर्वाज़ेहैं। अवतारों, देवताओं मुनि महात्माओं और ऋषियों के सुन्दर चित्र लगे हुएहैं ऊपर से झारों की झिरमिर भी खूब झगमगा रहीहै जिन के ऊपर विचत्र चित्र चित्रितहैं इस की शोभा और मनो हरता को वर्णन करने का इस लेखनी को तो साहस नहीं होता है।

२ श्री गुरू श्रीचन्द्र मन्दिर

यहां गुरू श्रीचन्द्र उदासीनाचार्य्य जी की मूर्ति संगमरमर की भव्य विराजमानहै शंगार सजावट शोभायमानहै लोग दर्शन कर हिन्दू उदासीनों के पूर्वजों का स्मिृण कर मनमें पूर्णमासी समान शर्द्धा भक्ति भाव उत्पन्न होकर चर्णों मे लोट पोट हो जातेहैं औरभी अनेक चित्रों सहित एक चित्र में श्री नानक उदासीजी अपने गुरू सन्तरैण उदासी सें ओं सोऽहं का मंत्र लेकर मत्था टेक रहेहैं उदासीनों की जमात निर्बाणों की पासहै, छत में झाड़ फनूस झिरमिर लगरहीहैं, गुरू श्रीचन्द्र जी की मूर्ति आप हसकर भक्तजनों को हसाकर तीनताप मिटाइ कर आनन्दित कर रहीहै॥

३-सभा मण्डल

यह वह स्थान है जहां स्वामी जी के बैठने को बट वृक्षके
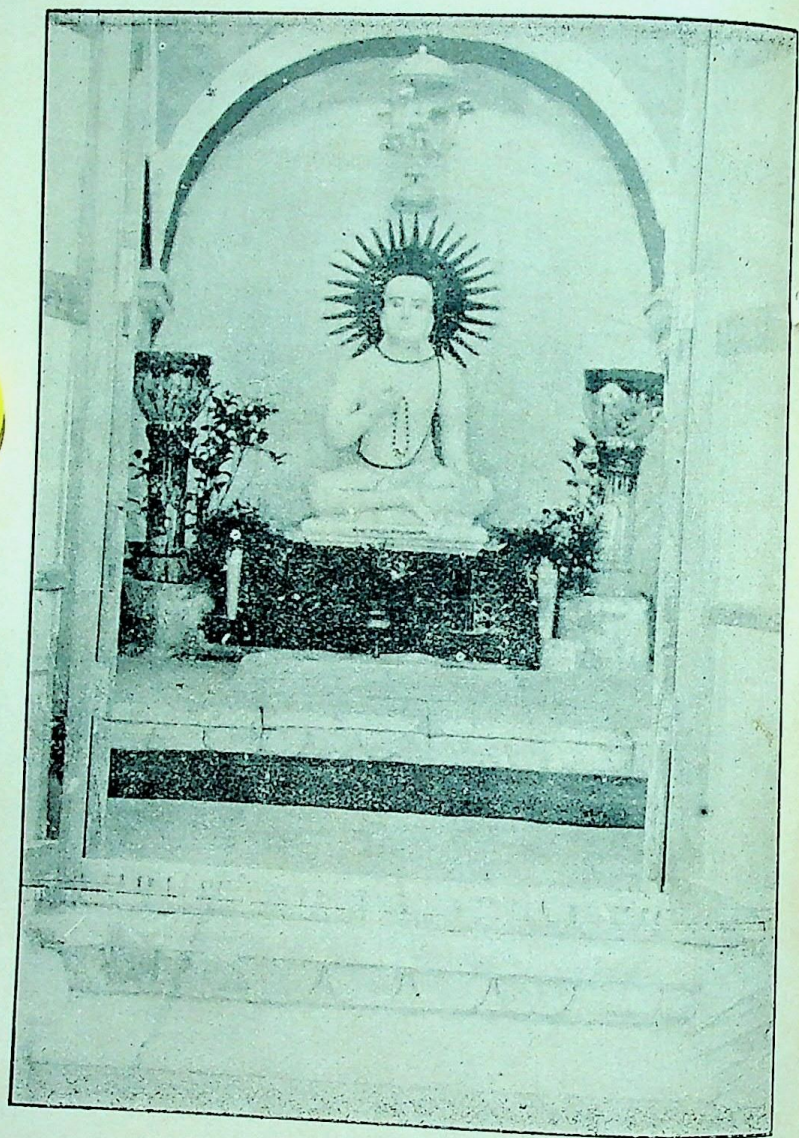
मन्दिर और श्री ११०८ गुरु श्रीचन्द्रजी महाराज उदासीनाचार्य

नीचे संगमरमर का सिंहासन बना हुआ है जब आप गेरुए कपड़ो से यहां आकर विराजित होतेहैं तब ऐसे लगताहै मानों लाल सूर्य नारायण संगमरमर रूपी श्वेत किरणाएं छोड़ रहाहै और दर्शन करने वालों के हृदय पट की अज्ञान रूपी अन्धेरी को दूर कर रहाहै और जब यहां बैठ कईयों के झगड़े निबेटते और न्याय करते हो तब ऐसे प्रतीत होता है कि महाराजा विक्रमादित्य जी अपने संगमरमर के सिंहासन पर बैठे हुएहैं।

४-अन्न कूट

सिंहासन के सामने जहां देवी का आदि मन्दिर है वहां एक हरड़ का कमण्डल रक्खा हुआ है जो कि आदि स्वामी वनखण्डी जी महाराज को देवी अन्न पूर्णा से मिला था नव रात्रों में इस कमण्डल की विशेष रीति से पूजा होतीहै इस कमण्डल का ही प्रभावहै जिससे आज तक इस तीर्थ पर जितने भी आदमी आते रहेहैं वे तृप्ति से भोजन पा सकतेहैं, कभी भण्डार खुटने वाला नहीं है और आगे भी जब तक लोगों की श्रद्धा बनी रहेंगी तबतक सारा दिन अन्न दान चलता रहनेकी सम्भावना है।

५-पाठशाला

संसकृत तथा हिन्दी प्रचार के लिए तीर्थ पर पाठशाला भी खुली हुईहै जहां तीन चार सुशिक्षित पण्डित सर्वदा रहतेहैं और कोई भी विद्या अध्ययन कर सकताहै साधुओं और ब्रह्मचारियों को तो वहां रहने को स्थान भी मिल जाताहै किसी प्रकार का वेतन देना नहीं पड़ता भोजन भी मुफ्त मिलताहै पाठशाला का समय सवेरे ८ से ११ तक और शाम को ३ से ६ तकहै

६-पुसतकालय

यहां चारों वेद; स्मृतिएं और १८ पुराणों के सहित वेदान्त, न्याय, मीमांसा, योग, सांख्य, ज्योतिष, वैदिक, छन्द, काव्य,

कोष, साहित्य, और नीति के कई ग्रन्थ रक्खे हुएहैं कईग्रन्थ तो हाथ के लिखे भी पड़ेहैं जो अब तक छपे ही नहीं ।

७-वाचनालय

यहां भारत वर्ष की कई मासिक पाक्षिक, सप्ताहिक, तथा दैनिक पत्र और पत्रिकाऐं हिन्दी गुरुमुखी सिन्धी उर्दू, और अंग्रेज़ी में आती रहतीहैं कोई भी इन को पढ़ कर लाभ ले सकताहै ।

८-रामझरोखा

यहां कई कुटियाएं बनी हुईहैं जहां कई देश देशान्तरों के साधु आकर निवास करतेहैं क्यों कि यहां उनको भजन और भोजनका सुभीता रहता है। आजकल पाखण्डकी अधिकता है और इस कहावत का दिन प्रति दिन ज़ोर शोरहै कि " नारि मुई घर सम्पत्ति नासी। मुण्ड मुण्डाय भए सन्यासी ॥" अथवा कई नीचि जाति के स्वयंभू सन्यासी बन कर फिरतेहैं उनकी यहां कलई खुल जातीहै और रह नहीं सकते क्यों कि स्वामी जी पहले उनकी परीक्षा कर लेतेहैं ॥ जो साधु लोग यहां रहते हैं उनमें से कई विद्याध्यन में, कई भजन पाठ में, कई ईश्वर गुणानुवादमें और कई ज्ञान गोष्ठी तथा शास्त्रार्थमें लगे रहतेहैं।

९-श्री छोटा साधुबेला

यहां सत्य नारायण का मन्दिर है और कई महात्माओं की समाधिएं बनी हुईहैं आगे गरमी के दिनों में यह भाग बीच में पाणी आने से अलग हो जाता था किन्तु अब पके मेंड (सिन्धी पत्थर की दिवालें) के बन्ध जाने से यह कष्ट दूर हो गयाहै ।

१०-श्री गुरु बनखण्डी बाग

यह बग़ीचा श्री छोटे साधुबेलामेंहै यहां कई प्रकार के फल
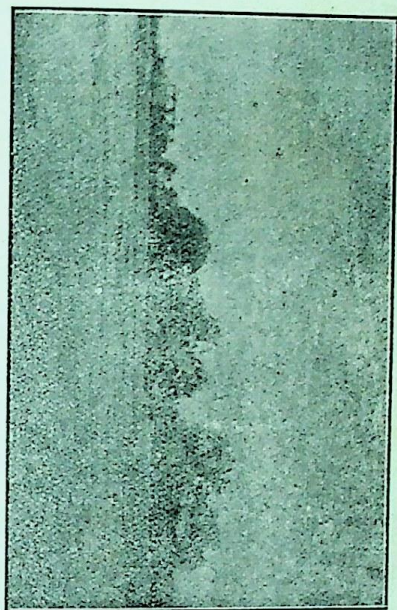
श्रीगुरू वनखण्डी बगीचे में श्रीकैलास महादेवजी
मन्दिर संगमरमर का

फूल, बूटे और बूटीएंहैं जिनकी शोभा अकथनीयहै।

११-हवा बन्दर

पूर्व दक्षिण कोने पर किनारे के साथ थोड़ा मैदानहै वहां गरमी के दिनों में वड़ी सुन्दर और स्वच्छ वायु चलतीहै बैठने के लिए संगमरमर के थल्हे लगे हुएहैं जो बहुत ठण्ढे रहितेहैं।

१२-शिकारपुर का स्थान (मठ)

वि० सं० १६५२ से शिकारपुर में भी स्वामी हरिनामदास जी का एक स्थानहै।

१३-माधवबाग

यह स्थान सक्खर नगर मेंहै जहां लक्ष्मी नारायणजी का मन्दिरहै तथा गुरु ग्रन्थ साहिब जी उदासीनों की कौमी वाणी के भी विराजमानहैं।

१४-तपोवन

वि० सं० १९७६ से हाथमें है सिन्धु गङ्गा के दक्षण पार यह स्थानहै तपस्या के योग्यही है।

१५-ऋषिकेष

यहां कई कुटियाएं बनी हुईहैं। जहां श्री साधुबेला तीर्थ के यात्री लोग रह सकतेहैं मेलों में तीर्थ के बाहर वाले यात्रियों को यहां रहने का बडा सुखहै तीन दिन से अधिक रहने वाले को स्वामी जी की आज्ञा लेनी पड़तीहै यह स्थान सिन्धु गङ्गा के उत्तर ओर बड़ाही रमणीक और श्री स्वामी हरिनामदास जी के अधिकारमेंहै वि० सं० १६७५-७६-७७-७८ में वर्तमान में भी कुटियाबणानेका कामचालू है।

मेले

वैसे तो यहां सदैव मेला लगा ही रहताहै देश देशान्तरों के यात्री लोग दर्शन करने को आ निकलतेहैं किन्तु प्रति रविवार को लोग विशेष रीति से आतेहैं भक्तलोग आके हरि कीर्तन करते है सब पर्व औरत्योहार बड़ी सज्ज धज्ज से मनाए जातेहैं जनमाष्टमी और दिवाली देखने योग्यहै चैत्री चन्द्र, विसाखी और पोष के चन्द्र को लोगों की बड़ी भीड़ रहतीहै चैत्र और अश्विन मास के नवरात्रों में दुर्गा देवी के उपलक्ष में अष्टमी के दिन कुमारी भोजन होताहै इन दिनों पर बहुत सी बालकाएं आकर कट्ठी होतीहैं। बड़ा मेला शिवरात्री का भी लगताहै।

परोपकार

"परोपकाराय सत्तां विभूतयः"

इस शास्त्रोक्ति को श्री साधुबेला तीर्थ बराबर सार्थक कर रहाहै जो कुछ यहां धन पदार्थहै वह सब विद्या दान, अन्नदान. सदा चारी भजन शील महात्माओं की रक्षा और स्थान को आदर्शनीय बनाने के लिए व्यय होताहै श्री स्वामी जी से लेकर सब साधु महात्मा केवल रोटी लंगोटी ही ले रहेहैं मैं नहीं जान सकता कि श्री स्वामी हरिनामदासजी किसी जजसे संख्या में कम मुकदमें निबेटते होंगे वे जज लोग तो हज़ारों रुपयें तनख्वाहें खातेहैं किन्तु आप निःस्वार्थी बन कर ही कईयों का यह काम करते हैं इससे अतिरिक्त समय समय पर जो स्थान की ओर से उपकार हुआहै वह स्थाली-पोलाक न्याय से यहां दर्शातेहैं।

वि० सं० १९५३ में बड़ा भारी प्लेग का प्रकोपथा माघ वदी १ से आरंभ हुआ जो पांच महीने चला नवें सक्खर,

पुराणे सक्खर और रोहिड़ी के सब लोग चले गए थे उसी समय श्री साधुबेला तीर्थ में २५० साधु रहते थे उनको यहां कुछ भी न मिल सकता था॥ सूची बटण तक लाड़काणे और कुईटा से मंगाये जातेथे वि० सं० १९५६ में मारवाड़ और गुजरात में बड़ा भयङ्कर दुष्काल पड़ा। तीन वर्ष से वृष्टि नहीं हुई थी। पञ्जाब और सिन्धु में अन्न था तो सही किन्तु बड़ा महिंगा था॥ इस लिए बहुत से मारवाड़ी लोग सिन्धु में आए। एक हजार मारवाड़ी सक्खर में भी आए जो सब के सब श्री साधुबेला तीर्थ में स्वामी जी की शरण में पड़े तब श्री स्वामी हरिनामदासजी उनके ऊपर दया लाकर छे मास तक भोजन देते रहे॥ इस समय वे अपने धन्धे रोजगार को भी लग गए थे अतः फिर प्रति रवीवार को उनको भोजन मिलता रहा॥

वि०सं० १९६४ में डाक्टररास बिहारी घोस का बिल श्री मान वाइसराय की कौंसिल में पेश था जो मठ, मन्दिर धर्म्म सम्पत्ति पर पेश हूआ था जिसमें बहुत हानी देखकर उसके निषेध में बड़ी दर्खास्त देकर रद कराया था॥

ई० सन् १९१९ में वाइसराय की कौंसिल में वर्ण सङ्करी पटेल बिल पेश हुआ था जिससे हिन्दु धर्म की बहुत ही हानि होती जान कर श्री स्वामी जी ने एक बड़ी दर्खास्त अंग्रेजी में छपवाय के इस वर्णनाशिक बिल को नाश करने के लिए वायसराय को भेजी॥

यह सब नमूने मात्र संक्षेप से दिखाया गयाहै॥ बुद्धिमान् लोग इससे ही श्री साधुबेला तीर्थ का महत्व समझ लेगें बाकी अविचार वान लोग केवल अपने हठ परहैं और व्यर्थ श्री साधुबेला तीर्थ पर कई प्रकार से कटाक्ष किया करतेहैं उनको समझाने की तो चतुर्मुख ब्रह्मा को भी सामर्थ्य नहींहै॥

इति श्री मत्सिन्धुवादि सप्तनद मध्य वर्ति श्रीसाधुबेलातीर्थाधिष्ठा

तृयोगिराज पूज्यपाद श्री १०८ मत्स्वामि वनखण्डिसिंहासनासीन श्री मदुदासीन वर्य्यपरमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री १०८ मत्स्वामी हरिनामदासाज्ञया कार्ष्णि नारायणदासेन विनिर्मितं श्री साधुबेलातीर्थेतिहासं समाप्तम् ॥

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः सुखमवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ ॐ शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिश्चास्तु ॥
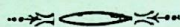
॥ श्री गुरु वनखण्डिसमज्ञा ॥

श्रीमान् पं० तेजोभानु शर्म्मविरचिता ॥

यशो निधेर्यस्य परां समज्ञामियत्तया कीर्तयितुं प्रवृता ।
मनीषिणां संचकिता मनीषा नमामि तं श्री वनखण्डिदेवम् ॥१॥
मुनीर्महीयान् महतां महस्वी सर्व सहोधर्मधनस्तपस्वी ।
वाचं यमस्सत्यरतो यशस्वी सोऽयंनमः स्वीकुरुतां मनस्वी ॥२॥
तत्वप्रसंख्या न कृतांधुरीणाःवन्दारु विद्वज्जवृन्दबन्धुः ।
नः पातुपापात् पतितान् भवाब्धौमानायमानेषुसदासमानः ॥३॥
औदास्यमाश्रित्य गुणान्व्युदस्य यः साधुतांसार्थकतामनैषीत्।
श्रीचन्द्रपादाम्बुजचञ्चरीकः तापार्तिपूर्णान् परितःपिपर्तु ॥ ४ ॥
स्वाध्याय याथार्थ्य विचारदक्षः गृहीतसाष्टांगसुयोगपक्षः ।
कांतार देशे जलवायुभक्षः श्रीयं स दिशयाद् विगलद्विपक्षः ॥५॥
ध्याने प्रवीणः स्मरणे नवीनो भोगेष्वदीनो गुरुपादलीनः ।
पापैर्विहीनोहरितोयमीनो भूयाददयीनः प्रतिसात्मनीनः ॥ ६ ॥
मनोविजेतादुरिताऽपनेता वेत्ताऽऽ गमानांयशसांनिचेता ।
दिशांविनेतायातिवृन्दनेता चतःप्रसीदेत् स पवित्रचेताः ॥ ७ ॥

येशामनेहागतकामनेहा निर्गलानन्दनदेनिमग्नः ।
कल्पान्तमाविष्कृतपौरुषाणां तेषांनुतिर्नोनितरांपुनातु ॥ ८ ॥
येषांपवित्रैरमितश्चरित्रैः परिष्कृत्तास्सन्तिदिशश्चतस्त्रः ।
समानभावेनविभूतिभाजां तेषांस्तवोऽस्तद्वृजिनंलुनातु ॥ ९ ॥
जिघ्रन्तियस्यांघ्रिसरोजगन्धं कुलाग्रगण्यस्यसदाकुलीनाः ।
महानुभावस्यमहोदयाश्च तस्मैनमःश्रीवनखण्डिनेऽस्तु ॥ १० ॥
सुदुर्गमेसप्तनदांतराले संस्थापयामासमहामठंयः ।
आबालगोपालजनप्रसिद्धं तस्मैनमःश्रीवनखण्डिनेऽस्तु ॥ ११ ॥
यः साधुवेलाऽभिधपुण्यतीर्थं चक्रेस्थितिंशिष्यपरम्पराणाम् ।
निष्कांक्षितानांधुरिपारिकांक्षी तस्मैनमःश्रीवनखण्डिनेऽस्तु ॥ १२ ॥
आसिन्धुदेशादपिसिन्धुदेशा दारभ्यसर्वोदिशिदक्षिणस्यां ।
यदाश्रमंजानपदानमन्ति तस्मैनमःश्रीवनखण्डिनेऽस्तु ॥ १३ ॥
ताःसिद्धयोयस्यपुरःस्फुरन्ति भ्रू संज्ञयासूचितकार्ययताः ।
नारायणप्रेमपरायणस्य तस्मैनमःश्रीवनखण्डिनेऽस्तु ॥ १४ ॥
मन्यामहेधन्यतरान्नरांस्तान् तद्दर्शनस्पर्शनसेवनाद्यैः ।
संमानयन्तिस्मसमाःक्षणेन तेभ्योवटुभ्यो नतयःपटुभ्यः ॥ १५ ॥
सद्भ्योमहद्भ्यःप्रतिमानवद्भयः सदासदाचारविचारकृद्भ्यः ।
आचार्यवर्योदितरीतिविद्भ्यो नमोनमस्स्यात्सुतरांबृहद्भ्य ॥ १६ ॥
येये क्रमादाश्रमपादपीठं विभूषयन्ति स्म निजासनेन ।
हंसावतंसेषुगतेषणेषु नमस्कृतिस्तेषुयतीश्वरेषु ॥ १७ ॥
कंकंगणंस्तौतुगुणालयाना मनन्तशक्त्यासमलंकृतानां ।
इत्येवमत्वाकवितेजभानुः स्तुतिंसमाप्तेर्वशमानिनाय ॥ १८ ॥
इमामधीयन्स्तुतिमादरेण भोगाभिलाषीभवमुक्तिमीयात् ।
मोक्षाभिलाषी भवमुक्तिमयात् सर्वाभिलाषीखलुसर्वमीयात् ॥ १९ ॥

॥ श्री स्वामिहरिनामदासाष्टकम् ॥

श्रीमान् पं० तेजोभानुशर्म्मविरचितम्

क्रमागतंश्रीवनखण्डिदेव सिंहासनासीनमहीनसत्वम् ।
महोज्वलंश्रीहरिनामदासं नमाम्युदासीनमतप्रधानम् ॥ १ ॥
उदारमाहारमुदारचेता गंगादिकुम्भोत्सवसाधुसङ्घे ।
विश्राणयामासदिवानिशंयो नतःस्मतंश्रीहरिनामदासम् ॥ २ ॥
ब्रह्मण्यतायत्रशरण्यताव। कर्मण्यताधर्मवरेण्यता च ।
गणागुणानाममितावसन्ति धन्यःसदासाधुषुकस्तदन्यः ॥ ३ ॥
स्थानाधिपास्सन्तुपरश्शताये कापर्ण्यदोषेनयुताइतास्ते ।
स्थानाधिपत्यंतदमुष्यमन्ये महावदान्यःकिलयस्समान्यः ॥४॥
व्यङ्गेषुरुग्णोष्वथदुर्गतेषु विद्याविनीतेषुयथाधिकारम् ।
वसत्राण्यमत्राणिचपुस्तकानि विभक्तवान् यः स सदानमस्यः॥५॥
गीता निपीता नितरामनेन नाम्नांसहस्रंपठितंत्वजस्रम् ।
मर्यादयापूरुषसत्तमोऽयं सद्भिर्महद्भिःपरिवन्दनीयः ॥ ६ ॥
विद्यांमतिंनामविभर्तिविद्वान् ज्योत्स्नांवाहिमांशुबिम्बम् ।
रत्नानितायानि च निम्नगेशः कीर्तिंदयांचैवतथामहात्मा ॥७॥
संख्यावतांदूरदृशांमहीयान् स्वसंप्रदायस्यसतांगरीयान् ।
स्वभावसौजन्यगिरामृदीयान् प्रसन्नतामेतुनतैर्वशीयान् ॥ ८ ॥
इत्यष्टकंश्रीहरिनामदास यतींद्रवर्यस्यमहत्वभाजः ।
श्रीसाधुबेलापदमास्थितस्य श्रवन्पठन्भद्रयुतोनरःस्यात् ॥९॥

वित्तव्यये मुक्तकराय तस्मै भण्डारिणे श्रीगुरुसेवकाय ।
प्रशंसनीयाय विचक्षणाय नमो नमो मे हरिदासनाम्ने ॥

॥ ॐ तत्सत्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

ओंनमः गुरु श्री चन्द्राय।

साधूनाञ्च शिरोमणि र्गिरिवरे पूर्णो गुणैः सर्वथा।
स्थितवा श्री वनखण्डिनश्चयातिनः पूज्ये शुभेचासने॥
लोकान्साधुजनांश्च स्वीयमधुरै र्वाक्यैश्च सन्तर्पयन।
दृष्टः श्री हरिनामदास प्रवरो विद्यार्थि नामर्थदः ॥१॥

विद्वज्जनाचार विचारसक्तो।
विद्याप्रचाराय सदानुरक्तः॥
स्वधानुरूपै र्वचनैः स्वकीयैः।
दत्वा सुशिक्षां भुवि वर्त्ततेयः ॥२॥
सिन्धुं स्वकीयेन यशश्चयेन।
सन्धायन्र्वश यथा गतेन॥
प्रख्यात सिद्धिर्जित वासनोवै।
दृष्टोमया श्री हरिनामदासः ॥३॥
देशान्तरेषु प्रथित प्रसिद्धि।
नीरान्तरेऽद्रेः शिखरे सुरम्ये॥
अभ्यर्थ कानां भुवि कल्प रुपो।
दृष्टोमया श्री हरिनामदासः ॥४॥
सुज्ञो मन्त्रिवरो यस्य।
लोकाना मनरञ्जकः॥
दृष्टः श्री हरिदासश्च।
स्थान शोभा विवर्द्धकः ॥५॥

इति श्री स्वामी हरिनामदास जीके चर्णों मे समर्पित पं० तेजभानु शर्मा रावलपिंडी मिती भाद्रों कृष्णा ३० शनिवार वि० सं० १६८४

इसी तरह श्री मान्पूज्यपाद स्वामी हरिनामदासजी उदासीन कुल कमल दिवाकर को जिन २ सज्जनों ने मानपत्र देकर अपनी वाणी व लेखनी को सफल किया है उन सज्जन पुरुषों

के नाम पाठकों के मनोरंजनार्थ संक्षिप्त रूपसे नीचे लिख कर सुना देना अत्यन्तावश्यकीय समुझताहूं ॥

(१) श्रीमान् पं० जोधराजात्मज व्यासमोती लालशर्मा जैसलमेर निवाशीनंदा द्वारा सिकारपुर सिंधु वि० सं० १६७२ माघ सुदी ७ वृहस्पतवार

(२) पंचायत नवीं सक्खर तथा सरमाली और पुष्कर्णी सभा और सारस्वतों की पंचायत सभने वि० सं० १९७२ कार्तिक शुक्ल १३ शनिवार सन्धया समय ५॥ बजे सक्खर में दीया

(३) श्रीमान् टहिलराम गिरधारीदास सामंत शिकारपुरी नागदेवी स्ट्रीट बंबई में वैसाख सुदी ४ मंगलवार वि० सं० १६७५

(४) श्रीमान् पं० हरिदत्तजी शर्मा सेकन्ड पंडित ड़ी. एम. कालेज वकिानेर सेठ गोरधनदास मारकीट कराची में वि० सं० १९७६ फाल्गुण कृष्ण १० शनिवार

(५) श्रीमान पं० शिवकुमार पं० गगनलाल शर्मा सभापति तथा अर्जुनदासजी मंत्री श्री सनातन धर्म युवक सभा सक्खर में वि० सं० १६८४ भाद्र शुक्ल ७ शनिवार

(६) हिन्दू सभा सक्खर के तरफ से, कुम्भ तथा श्री अमरनाथ जीकी यात्रा से वापिस होते सक्खर में पधारने पर वि० सं० १६८४ भाद्र शुक्ल ७ शनिवार

(७) श्रीमान् मिथलाधिपति आनरेवुल जी. सी. आई. ई. के. वी. ई. प्रधान सभापति श्री भारत धर्म महा मंडल प्रधान कार्यालय काशी २ कृष्णापौषमासे १९८० वि० कवीन्द्र नारायणसिन्हजी प्रधानाध्यक्त नें श्री साधुवेला तीर्थ में दीया।

(८) श्री हरिवल्लभ हिन्दी पुस्तकालय की प्रवंध कार्णी कमेटी की आज्ञा से बम्बई में छवीलदास रामदास सामंत मंत्री वि० सं० १९७५ वैसाख शुक्ल ४ मंगलबार

تعلقو سکر
ضلع شکارپور
سال ١٨٨٧ — ٨٨
١٨٩٣ — ٩٤
SUPERINTENDENT
REVENUE SURVEY